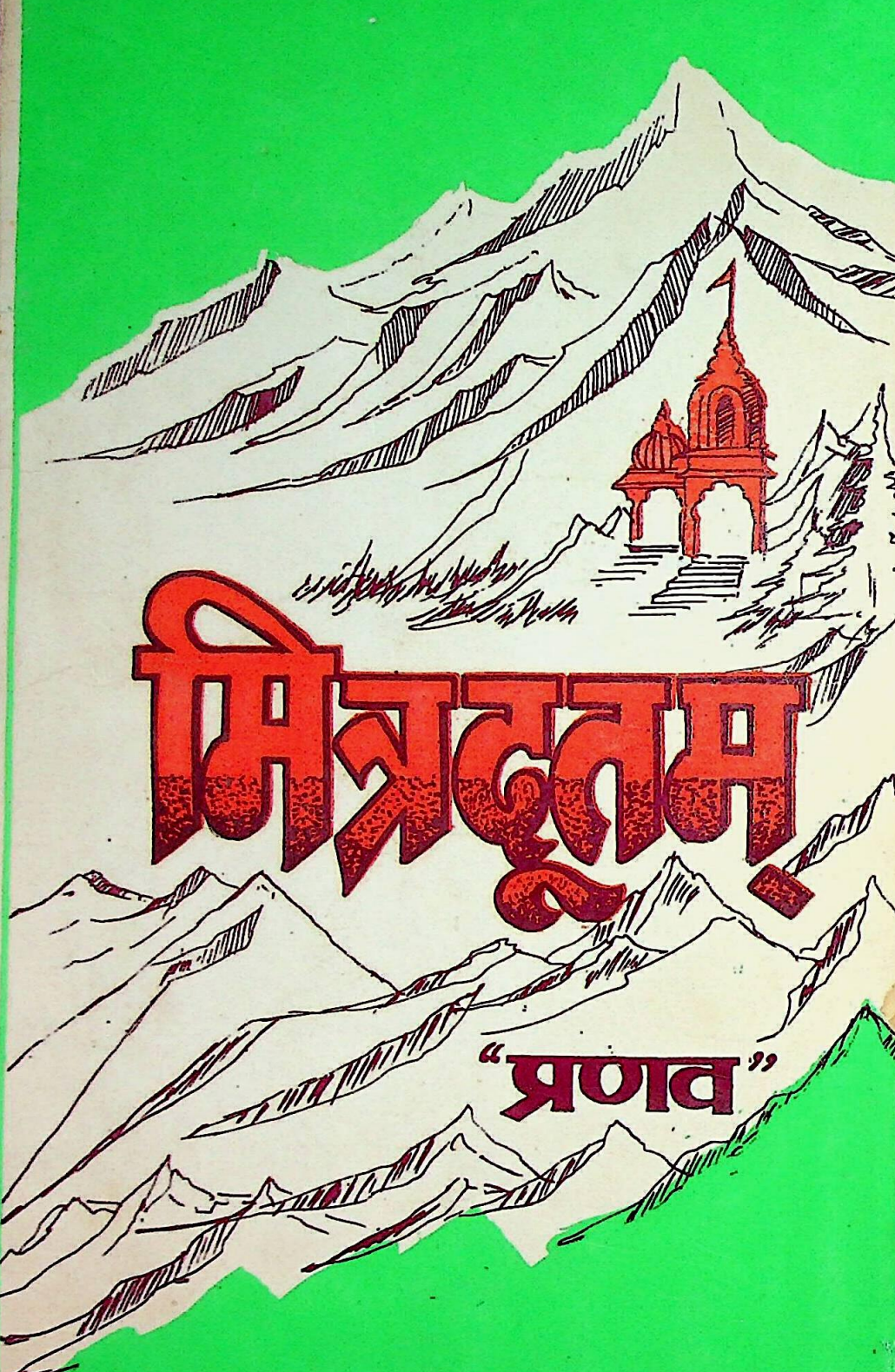
मित्रदूतम्
"प्रणव"

मित्रदूतम्

"मित्रदूतम्" एक यात्रावृत्त होने के साथ साथ रमणीय काव्य भी है। इस यात्रा का मार्ग मेरठ, हरिद्वार, मसूरी, नौगांव, बड़कोट, हनुमान् चट्टी, नारद चट्टी, जानकी चट्टी, यमुनोत्री धाम, ब्रह्मखाल, धरासू, उत्तरकाशी, टिहरी, श्री नगर, रुद्रप्रयाग, तिलवाड़ा, अगस्त्य कुण्ड, गुप्तकाशी, सोनप्रयाग गौरी कुण्ड, रामबाड़ा, केदारनाथ, आदि शंकर की समाधि, गौरी कुण्ड, चमोली पीपलकोटि, जोशीमठ, विष्णु प्रयाग, बद्रीनारायण धाम तक का है। कवि ने इन स्थानों से गुजरते हुए जो जो रामणीयक अनुभव किया था उस सब के प्रति अपने मित्र को आवर्जित करते हुए कवि एक सुखद सांस्कृतिक, धार्मिक और प्राकृतिक यात्रा का वृत्तांत मनोहारी शैली के माध्यम से उपन्यस्त करता है। कोई भी लोकवृत्त काव्यरूप में परिणत होने पर कैसी लोकोत्तर मिठास से भर जाता है इसका निदर्शन यह मित्रदूतम् काव्य है।

डा. रमाकान्त शुक्ल

(भूमिका से)

सुरभारतीसुषमाग्रन्थमालायाः प्रथमं पुष्पम्

मित्रदूतम्

(संस्कृत खण्डकाव्यम्)

"मुदिता हिन्दी व्याख्योपेतम्

प्रणेता-

डा० इच्छाराम द्विवेदी "प्रणव"

प्रकाशक-

सुरभारती सेवा संस्थानम् १६७/१२

पंजाबी कालोनी मैनपुरी (उ० प्र०) २०५००१

प्रकाशकः-
सुरभारती सेवा संस्थानम्,१६७/१२
पंजाबी कालोनी, मैनपुरी (उ० प्र०)
पिन–२०५००१

मित्रदूतम्

(खण्डकाव्यम्)

प्रणेता-डा० इच्छाराम द्विवेदी "प्रणव"
पुराण एवं इतिहास विभागाध्यक्ष
श्री एकरसानन्द केन्द्रीय संस्कृत
महाविद्यालय, मैनपुरी (उ० प्र०)

मूल्य– ३५/–रुपये
प्रथम संस्करण १९९२–सं० ५०० प्रतियां
मुद्रक-साइन्टिफिक प्रिन्टर्स,
स्टेशन रोड-मैनपुरी
☎ – ५१९

-प्राक्कथन-

संस्कृत में दूत काव्यों की सुदीर्घ परम्परा है। कवि कुलगुरु कालिदास के मेघदूतम् से प्रेरणा लेकर संस्कृत के ढाई सौ से अधिक कवियों ने दूत काव्यों की रचना की है जिनमें किसी न किसी व्यक्ति या वस्तु को किसी लक्ष्य तक अपना सन्देश देकर भेजा है। जिस स्थान से सन्देश प्रेषित किया गया है और जिस स्थान तक वह जाना है उसके मध्यवर्ती स्थानों की प्राकृतिक सांस्कृतिक तथा भौगोलिक सुषमा एवं विशेषताओं का वर्णन इन दूत काव्यों में संस्कृत के रचनाकारों ने किया है। संस्कृत के अतिरिक्त हिन्दी आदि भाषाओं में भी अनेक दूत काव्य रचे गए हैं।

मेघदूत के अनेक भाषाओं में वृत्तानुवृत्त अनुवाद भी हुए हैं तथा उसके एक-एक पद को समस्या पूर्ति के रूप में भी कवियों ने प्रयुक्त किया है। सारांश यह है कि कालिदास के मेघदूत से लेकर आज तक कवियों के मन में अपने दृष्ट पूर्व स्थानों का वर्णन करने का माध्यम ये दूत काव्य रहे हैं और कवियों ने इनकी रचना में विशेष अभिरुचि दिखाई है। डा० इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव' ने मित्रदूतम् नामक काव्य में दिल्ली से लेकर बद्रीनाथ तक के मार्ग की रमणीयता का चित्रण किया है। कथानक यह है कि मैनपुरी वासी कवि इच्छाराम द्विवेदी ने ज्येष्ठ मास की धूप से संतप्त होकर २ जून १९९० से १२ जून १९९० तक दिल्ली से यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ की यात्रा की थी।

यात्रा से लौटकर अपने प्रिय मित्र दिल्ली निवासी डा० रमाकन्त शुक्ल को पत्र के रूप में यह काव्य लिखकर भेजा। कवि ने अपने मित्र को दूत बनाकर भगवान बद्री नारायण के पास यह संदेश देकर भेजा कि इच्छाराम द्विवेदी ने आपके चरण कमलों में प्रणाम कहा है और मुझे मित्रदूत के रूप में आपके पास भेजा है मुझ से पहले वह सपरिवार यहां आया था उसके साथ धर्मपत्नी सुनीता मित्र देवेन्द्र जी तथा सखी सुषमा एवं उनके चिरंजीवी पुत्र दीपक भी थे। वह भक्ति पूर्वक आया था। हे प्रभु विप्र वंश के अंकुर उस कवि को अपनी शरण प्रदान कीजिए। इसके आगे १०५ वें पद्य में जो कहा गया है वह एक कवि का वचन भी हो सकता है और दूत के रूप में जाने वाले मित्र का भी। पद्य इस प्रकार है-

"तीर्थे क्षेत्रे स्खलतिविधिना यत्कृतं स्यान्मलापि,
सर्वं पापं शरणद विभो ! मे क्षमस्वाद्य सद्यः।
लोके पुण्ये त्वगजगपते पुण्यहीनस्त्वदीये,
नैवायातुं प्रभवति जनस्तर्हि शं मे विधेहि॥

मित्रदूतम् एक यात्रा वृत होने के साथ-साथ रमणीय काव्य भी है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि दिल्ली के शक्ति नगर निवासी श्री देवेन्द्र कुमार गोयल एवं सुषमा और उनके चिरंजीव पुत्र दीपक के साथ कवि ने कार द्वारा सपत्नीक यात्रा शुरू की थी। इस यात्रा का मार्ग मेरठ, हरिद्वार, मसूरी, नौगांव, बडकोट, हनुमान चट्टी, नारद चट्टी, जानकी चट्टी, यमुनोत्री धाम, ब्रह्मखाल, धरासू उत्तरकाशी, टिहरी, श्री नगर, रुद्र प्रयाग, तिलवाड़ा, अगस्त भूमि, गुप्तकाशी सोन प्रयाग, गौरी कुण्ड, रामवाड़ा, केदार नाथ, आदि शंकर की समाधि, गौरी कुण्ड, चमोली, पीपलकोटि, जोशी मठ, विष्णु प्रयाग, बद्री नारायण धाम तक का है।

कवि ने इन स्थानों से गुजरते हुए जो-जो रामणीयक अनुभव किया था उस सब के प्रति अपने मित्र को आवर्जित करता हुआ कवि एक सुखद, सांस्कृतिक, धार्मिक और प्राकृतिक यात्रा का वृत्तांत मनोहरी शैली के माध्यम से उपन्यस्त करता है। कवि ने इस मार्ग से अपने मित्र को भेजा है और दो स्थानों पर अपना संदेश देने का अनुरोध किया है। यह संदेश गंगा जी एवं बद्रीश्वर के लिए है। संदेश में कोई अधिक बात नही की गई है केवल प्रणाम निवेदन, कृपाकांक्षा अपराध क्षमापन एवं भगवद्स्तुति की गई है।

मित्रदूतम् का छन्द मंदाक्रान्ता है जो प्रायः सभी दूत काव्यों का छन्द है। कवि ने अपने मित्र के व्यक्तित्व का भी अपनी दृष्टि से प्रकाशन किया है जहां कवि के सरस और विनोदी स्वभाव की व्यंजना होती है। यह इच्छा-राम जी का मुझ पर स्नेहातिरेक है कि उन्होंने मित्रदूत का पद मुझे सौंपा है मुझे आशा करनी चाहिए कि उनका संदेश शीघ्र ही गंगा माई एवं बद्री-नारायण जी के सम्मुख मैं कहूँगा दूंगा।

मित्रदूतम का सर्व प्रथम प्रकाशन देववाणी परिषद दिल्ली के त्रैमासिक मुखपत्र अर्वाचीन संस्कृतम् के बारहवें वर्ष के तृतीय अंक में पृष्ठ १५३ से १८४ पर १५ जुलाई १९९० को हुआ था। जिन बन्धुओं के साथ कवि ने यह सुखद यात्रा की थी वे सभी हमारे भी घनिष्ठ परिचत हैं। कोई भी लोकवृत्त काव्य रूप में परिणत होने पर कैसी लोकोत्तर मिठास से भर जाता है इसका निदर्शन यह मित्रदूत काव्य है।कितने लोग दिल्ली से केदारनाथ, बद्रीनाथ की यात्रा करते हैं किन्तु उनके अनुभव उन तक ही सीमित रहते हैं। कवि का अनुभव तो जगत के आनन्द के लिए होता है। अतः कवि इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव' ने अपने अनुभवों का इस रचना के माध्यम से लोकार्पण कर दिया है इच्छाराम जी से मैं विगत ग्यारह वर्षों से जुड़ा हुआ हूँ। इनसे मेरा कुछ नहीं छिपा है। इनके कैशोर्य से यौवन की तरफ बढ़ते कदमों का मैं साक्षी हूँ इनके कवित्व, इनकी उदाराशयता, भागवत परायणता, इनकी सुरभारती संस्थान मैनपुरी के माध्यम से संस्कृत प्रचार साधना इनकी पूज्य

पूजा, मित्रों से सद्भाव तथा कनिष्ठों के प्रति स्नेह की मनोरम झाकियाँ मेरी श्रुति और दृष्टिगोचर हैं। अभी इनका कृतित्व और व्यक्तित्व विकास के अनेक आयामों का संस्पर्श करने के लिए कृत संकल्प है। मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि इन्हें सदा स्वस्थ, प्रसन्न, यशस्वी तथा रचना, साधना में लीन रखें। जिससे कि भगवती भारती का अक्षय कोष अपना रत्नालोक सहृदयों के लिए सदैव उद्घाटित रहे। इस काव्य के विषय में वर्तमान और अनागत के समीक्षक अवश्य विचार करेंगे ऐसी मुझे आशा है।

डा० रमाकान्त शुक्ल
प्रधान सम्पादक
अर्वाचीन संस्कृतम् त्रैमासिक
देववाणी परिषद्
R-७ वाणी विहार, उत्तम नगर
नई दिल्ली

तिथि
१७ अप्रैल १९९२
सिंहस्थ पर्व कुम्भ स्नान
चैत्र शुक्ल पूर्णिमा शुक्रवार
सं० २०४९

पुरोवाक्

अये देववाणीसमाराधनतत्पराः !

तत्रभवतां करसरोरुहयोः सादरं सप्रश्रयञ्च समर्पयदिदं मित्रदूतं नाम खण्डकाव्यं मोमोत्ति चेतोऽस्माकम्। मित्रमेव दूतभूतं यत्र विराजते तदेवेदं काव्यं सुहृदवर्याय देववाणीसमाराधने समर्पितजीवनाय जनस्यास्य काव्यगुरवे डा० रमाकान्त शुक्ल महाभागाय सादरं समर्प्यते। काव्यस्यास्य प्रणयने भगवत्याः भागीरथ्यास्तथा च शुक्ल महाभागानां मधुरा स्मृतिरेव मूलभूतासीत्। काव्यस्यास्य पूर्ववर्तिनी या कथा वर्तते सात्र विशेषतो निगद्यतेऽस्माभिः।

नवत्युत्तरैकोनविंशतितमेऽब्दे (१९९०) कालिदास अकादेमी उज्जयिनीतः कल्पवल्लीति समारोहात् प्रतिनिवृत्तमाने सति शुक्ले रमाकान्ते मयि च रेलयान एव चर्चाऽभूत् यत् कस्मिन्नपि समये भगवतः केदारेश्वरस्य दर्शनं करणीयं जीवनसाफल्यायेति। शनैः शनैः ग्रीष्मर्तुः समागता। अकस्मादेव मई मासेऽस्माकं मित्रवर्याः श्री देवेन्द्र गोयल महाभागाः केदारेश्वरयात्रायै सवाहनाः सपत्नीकाः ससुताश्च सम्प्राप्ताः। चतुश्चक्रिकायां समभवत् स्थान संकोचः। तस्मात्कारणात् मया दिल्लीस्थेनापि न शुक्ल महाभागाः सम्प्रार्थिताः सहयात्रार्थम्। अथ चैकस्मिन्दिवसे गङ्गादशहरा तिथौ प्रयातोऽहं कारद्वारा भगवतो बदरीशस्य केदारेश्वरस्य च दर्शनार्थं परं मार्गे पौनः पुन्येन चित्ते सैव भावनास्फुरत् यन्मया यत्प्रतिज्ञातमासीत् तत्खण्डितमधुना शास्त्रेषु कथितञ्च मित्रद्रोहे च पातकम्"। कलिजन्य कौटिल्याभिभूता मादृशाः कुर्वन्त्येवैतादृशानि धार्ष्ट्यानि।

क्रमशोऽस्माकं सा यात्रा यमुनोत्री धामतः प्रतिनिवृत्य सप्ताहान्ते गंगोत्तरी क्षेत्रे समागता। सायंकाले यदा परमरमणीये भगवत्या सुरनद्याःपाविते सुरम्ये च मन्दिरे नीराजनासमये सपत्नीकोऽयं जनस्तीर्थदेवतायाः गङ्गायाः

दर्शनमकरोत्तदा भावविह्वलतया धारासाराश्रुसम्पातपूर्वकं समुदपद्यत् तादृशी पश्चात्तापज्वाला येन बहुकालं यावत् नाशवनोत् स्थिरीकर्तुमात्मानम्। तस्मिन्नेव काले भगवत्याः तीर्थदेवतायाः कृपाप्रसादेन संकल्पो मे मनसि प्रास्फुरत् यत् प्रायश्चित्तानुष्ठानरूपेणेदं सर्वं वृत्तं प्रथमं तावत् मित्रवर्याय निवेदनीयमस्ति।

काले समागते सति भगवतो बदरीशस्य परमकृपया सास्माकं तीर्थयात्रा सकुशलतया सम्पन्नाऽभूत्। प्रत्यावृत्ते सति गृह एकस्मिन् सायंकाले तामेव प्रायश्चित्तभावनामनुस्मरता मया भगवत्या गङ्गायाःकृते प्रणतिं निवेद्य लेखनी समुत्थापिता। प्रातः कालं यावन् मित्रदूतमिदं नेत्रपथं प्रत्यक्षिगोचरीभूतमभवत्। तस्मिन्नेव दिने प्रेषितञ्च मित्रवर्येभ्यः। अर्वाचीनसंस्कृतमिति त्रैमासिक्यां पत्रिकायां प्रकाशितमभवदिदं मित्रदूतं प्रथमतया।

मित्रदूतस्य प्रकाशनानन्तरं साहित्यशास्त्राचार्याणां परमविदुषां डा० रेवाप्रसाद द्विवेद महाभागानां तथा च देववाणी काव्यसुन्दरीसमाराधनतत्पराणां महाकवीनां डा० अभिराज राजेन्द्र मिश्र महाभागानां शुभाशंसाः काव्यस्यास्य कृतेऽर्वाचीन संस्कृतस्याग्रिमेऽके प्रकाशिताः। ताः दृष्ट्वा सोत्साहोऽयं जनः काव्यस्यास्य प्रकाशने समर्थोऽभूत्। साम्प्रतञ्च सुरभारतीसुमनोग्रन्थमालायाः प्रथमकाव्यकुसुमरूपेणेदं प्राकाश्यमुपैति। ग्रन्थस्यास्य सूक्ष्मेक्षिकया संशोधनमादरणीयैः सद्गुरुदेवैः कालिदासाकादेम्यामुज्जयन्या मुपाचार्यैः डा० बच्चूलालावस्थि महाभागैः कृतं तदर्थं कैवशब्दै कृतज्ञताज्ञापनं करोमीति न जाने केवलं प्रणिपातपुरस्सरं तेषामाशिषं निकामं कामये। काव्यस्यास्य प्रणयने मुद्रणे प्रकाशने च यादृशं साहाय्यं नव देहलीस्थेन मम मित्रवर्येण वैश्य वंशोद्भवेन श्री देवेन्द्र गोयल महाभागेन तद्धर्म पत्न्या सुषमा देव्या च विहितं तत्सर्वं किमपि जन्मान्तरीयं बन्धुताभावं विना नैव भवितुमर्हति। तयोः कृते शुभाशीर्वचांस्येव भवन्तु पुनरपि बन्धुस्नेहकन्दलितानि-जन्मान्तरेषु।

यैर्यैश्च महानुभावैः प्रशंसितमिदं काव्यं, पठितं समीक्षितञ्च गुणदोषदृशा सर्वेषां तेषां कृते पौनः पुन्येन धन्यवादाः वितीर्यन्ते अन्ते च प्रार्थ्यन्ते

भगवतीभागीरथी भगवान् केदारेश्वरो भगवान् बदरीशश्च यदिमे स्वीयैरमल कृपापूरितैःकटाक्षैरस्मान् पाठकान् श्रोतॄंश्च कृतार्थयन्तु। विदुषां परिशीलनाय तेभ्य एव समर्पयतेदं काव्यं विरम्यते मया–

आषाढ़ शुक्ल द्वितीया
रथयात्रा
सम्वत–२०४९

कवितल्लजः
इच्छारामो द्विवेदी
श्वेतद्वीप
सुरभारती सेवा संस्थानम्
१६७/१२ पंजाबी कालौनी
मैनपुरी २०५००१ (उ० प्र०)

विदुषां सम्मतयः

अस्ति किञ्चिद्वाचिकम् ।

शिमला, १०-४-९१

प्रणवाख्येन मद्दुर्ललितानुजेन मदनपुरवास्तवेनापि निर्मदेन विरचितं मित्रदूतं पाठं पाठं महान् प्रमोदस्समजनि। यतो हि काव्यमिदं न केवलं प्राक्तनदूतकाव्यपरिपाटीमधुनाऽपि सञ्जीवयतितरामपि तु कमपि कम्रधियं सुधियं विश्रुतयशसं नायकीकृत्य संस्कृतकविताया जीवन्ततामपि साधु साधयति मध्ये मध्ये च कविना प्रयुक्ता नर्मभर्म प्रसङ्गा अतिपरिचयादवज्ञां जनयन्तोऽपि गोष्ठीरसं सम्यक् पोषयन्ति

यथा खलु मदुपज्ञे मृगाङ्कदूताभिधे काव्ये भारतस्थाः सर्वेऽपि सहृदय-संस्कृतसेविनस्संमृताश्चन्द्रयात्राव्याजेन तथैवात्रापि प्रणवकविना कश्चित्प्रेष्ठो वयस्यो डा० रमाकान्तो ललितकाव्यविषयीकृतो वर्तते । काव्यप्रणयनार्थं कृपया मत्साधुवादैः आशीर्वचोभिश्च तेजस्विनमिमं माणवकं सभाजयन्तामिति सानुग्रहं निवेद्यते ।

—मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः

आचार्योऽध्यक्षश्च हिमाचलप्रदेशविश्वविद्यालयीसंस्कृतविभागे (शिमला)

कालिदाससंस्थानम्, वाराणसी

२८, महामनापुरी, वाराणसी-५

संस्थापक अध्यक्ष
आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी

सचिव
सदाशिवकुमार द्विवेदी

पत्रकमांक २२/९१-९२

दिनांक १२-४-१९९१

श्रीमतः प्रणवकवेर्मित्रदूते धाम चतुष्टयस्य यद् वर्णनं तत्रानुभवामो मेघदूतस्य काव्यकलायाः स्पर्शम्। भगवान् बदरीशः स्पर्शमिमं प्रगुणयेद् येन मित्रवराः श्रीद्विवेदिनः समुदारं यशोऽर्जयेयुः।

काश्यपो द्विवेदी
रेवाप्रसादः 'सनातन'

अथ श्रीप्रणवकविप्रणीतं

॥ मित्रदूतम् ॥

कश्चिद् विप्रो मयननगरे ग्रीष्मबाधानुतप्तः,
प्रत्यावृत्तः सपदि विमलाद्धेमकूटात्पवित्रात् ।
स्मृत्वा स्मृत्वा परमसुखदञ्चोत्तराखण्डशैत्यं,
भावाकाशे स्फुरितशिखरः पत्रमेतल्लिलेख ॥१॥

अन्वय- मयननगरे ग्रीष्मबाधानुतप्तः सपदि विमलात् पवित्रात् हेमकूटात् प्रत्यावृत्तः कश्चिद् विप्रः परमसुखदं उत्तराखण्डशैत्यं च स्मृत्वा स्मृत्वा भावाकाशे स्फुरितशिखरः (सन्) एतत् पत्रं लिलेख ।

अनुवाद- मैनपुरी नगर में गर्मी की पीड़ा से तप्त एवं तुरन्त ही विमल तथा पवित्र हिमालय की यात्रा से लौटे हुये किसी विप्र ने परम सुखद उत्तराखण्ड की शीतलता को स्मरण करते हुए तथा अपने भावाकाश में शिखरों का स्फुरण प्राप्त करते हुए यह पत्र लिखा ।

१- प्रणव इति डा० इच्छाराम द्विवेदस्य उपनाम ।

इन्द्रप्रस्थे विशदविभवे शुभ्रवाणीविहारे,
कान्तायुक्तं सरसहृदयं श्रीरमाकान्तशुक्लम् ।
प्रेयो मित्रं मधुरमधुरैर्भावगुच्छैरुपेतं
पत्रं दत्त्वा शुभहिमगिरौ प्रैषयन्मित्रदूतम् ॥ २ ॥

अन्वय- इन्द्रप्रस्थे विशदविभवे शुभ्रवाणीविहारे कान्तायुक्तं सरसहृदयं श्री रमाकान्तशुक्लं प्रेयो मित्रं मधुरमधुरैः भावगुच्छैः उपेतं पत्रं दत्त्वा शुभहिमगिरौ मित्रदूतं प्रैषयत् ।

अनुवाद- उसने विशाल वैभव वाले इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में वाणीविहार नामक स्थान पर सपत्नीक रहने वाले रसिकहृदय प्रिय मित्र श्री रमाकान्त शुक्ल को अत्यन्त मधुर भावगुच्छों से युक्त यह पत्र देकर मित्रदूत के रूप में पवित्र हिमालय पर भेजा ।

बन्धोः ! पूर्वं परमशिवयोः सन्निधानादवन्त्याः,
आगच्छंस्त्वं शकटपिटके मामवादीः सरागम् ।
इच्छाराम त्वमसि हृदयं मामकीनं द्वितीयं,
शम्भोः प्रेयो हिमगिरिकुलं प्रापय त्वं कदापि ॥ ३ ॥

अन्वय- बन्धोः ! पूर्वं परमशिवयोः सन्निधानात् अवन्त्याः आगच्छन् त्वं शकट पिटके सरागं मां अवादीः (यत्) इच्छाराम ! त्वं मामकीनं द्वितीयं हृदयं असि ! त्वं कदा अपि शम्भोः प्रेयो हिमगिरिकुलं (मां) प्रापय ।

अनुवाद- हे मित्र ! पहले उज्जैन से भगवान पार्वती महेश्वर के सन्निधान से लौटते हुए आपने रेलगाड़ी में प्रेम पूर्वक मुझसे कहा था— इच्छाराम ! तुम मेरे द्वितीय हृदय हो किसी समय मुझे हिमालय की यात्रा पर ले चलो ।

वाञ्छाऽपूर्वा वसति हृदये मामकीने सदेयं,
ज्योतिर्लिङ्गानमितविभवान् भारतेऽहं समग्रान् ।
नीत्वा स्वीयां नयनसरणौ धन्यताभावयुक्तो,
लोके सर्वं जननसुफलं प्राप्तुकामोऽस्मि बन्धोः ! ॥ ४ ॥

अन्वय- बन्धो ! मामकीने हृदये सदा इयं अपूर्वा वाञ्छा वसति (यत्) अहं भारते अमितविभवान् समग्रान् ज्योतिर्लिङ्गान् स्वीयं नयनसरणौ नीत्वा धन्यताभावयुक्तः (सन्) लोके सर्वं जननसुफलं प्राप्तु कामः अस्मि ।

अनुवाद- हे बन्धु ! मेरे हृदय में सदा यह अपूर्व इच्छा रहती है कि मैं भारत में स्थित अमित वैभवशाली समस्त ज्योतिर्लिङ्गों को अपने दृष्टि पथ में लाऊं और धन्यता के भाव से युक्त होकर संसार में जन्म लेने का फल प्राप्त करूं ।

तत्सन्दर्भे कविकुलमणे ! मित्रमेतत्त्वदीयम्,
पत्रं ह्येतल्लिखति मुदितं हैमशैलान्निवृत्तम् ।
नेत्रेऽद्यापि स्फुरति रमणीयाकृतिः पर्वतानां,
अत्युच्चानां विपुलहिमवच्छृंगकानां समन्तात् ॥ ५ ॥

अन्वय- कविकुलमणे ! तत्सन्दर्भे (एव) एतत् त्वदीयं मित्रं मुदितं (सत्) एतत् पत्रं हैमशैलात् निवृत्तम् लिखति । अद्यापि (मे) अत्युच्चानां विपुलहिमवत्शृंगकानां पर्वतानां रमणीयाकृतिः समन्तात् नेत्रे स्फुरति ।

अनुवाद- हे कविकुलमणे ! उसी सन्दर्भ में यह आपका मित्र प्रसन्न चित्त होकर यह पत्र हिमालय से लौटकर लिख रहा है । आज भी मेरी आंखों में अत्यन्त ऊंचे-ऊंचे विपुल हिमशिखरों व पर्वतों की रमणीय आकृति स्फुरित हो रही है ।

इन्द्रप्रस्थादहमपि सखे ! सम्प्रयातस्तदानीं,
देवेन्द्राद्यैः परिकरयुतैः कारयाने निविष्टः ।
तन्वङ्गी मे सकलसुखदा धर्मपत्नी सुनीता,
वामे भागे विकचवदना वर्तते स्म प्रसन्ना ॥ ६ ॥

अन्वय– सखे ! तदानीं अहं अपि इन्द्रप्रस्थात् परिकरयुतैः देवेन्द्राद्यैः (सह) कारयाने निविष्टः (सन्) सम्प्रयातः । मे सकलसुखदा धर्मपत्नी तन्वङ्गी सुनीता विकचवदना (सती) वामे भागे प्रसन्ना वर्तते स्म ।

अनुवाद हे सखे! उस समय मैंने भी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से सपरिवार देवेन्द्रजी (मेरे मित्र) के साथ कार में आरूढ़ होकर प्रस्थान किया । वाम भाग में मेरी कृशाङ्गी धर्मपत्नी सुनीता जिसने मुझे समस्त सुख दिए हैं प्रसन्न वदन विराजमान थीं ।

तीर्थे यात्रा भवति विफला सर्वदा मित्र ! तेषां,
येषां कान्ताः क्षुभितहृदया गेहकोणे वसन्ति ।
गन्तव्यं भो ! निजदयितया सार्द्धमेव त्वयापि,
अन्यत्कृत्वा न खलु सुफलं प्राप्स्यसे तीर्थभूमेः ॥ ७ ॥

अन्वय– मित्र ! तेषां तीर्थे यात्रा सर्वदा विफला भवति येषां कान्ताः क्षुभित-हृदयाः गेह कोणे वसन्ति भो ! त्वया अपि निजदयितया सार्द्धं एव गन्तव्यं अन्यत् कृत्वा तीर्थभूमेः सुफलं न खलु प्राप्स्यसे ।

अनुवाद– मित्र उन लोगों की तीर्थयात्रा सर्वदा विफल हो जाती है जिनकी धर्मपत्नी क्षुब्ध हृदय से घर में छोड़ दी जाती है । अतः आप भी अपनी सहचरी के साथ ही प्रयाण करें अन्यथा तीर्थ यात्रा का सुफल प्राप्त नहीं हो सकेगा ।

मार्गो रम्यो विपुलसुखदो वर्ण्यते त्वत्कृते वै,
गत्वा येन त्वमपि परमां निर्वृतिं लप्स्यसे भोः ।
मध्ये-मध्ये शिथिलचरणो यत्र नीत्वा क्षपास्त्वं,
प्रत्यूषेषूच्छ्वसितहृदयः प्राप्स्यसे भूरिहर्षम् ॥ ८ ॥

अन्वय– भोः ! त्वत्कृते वै विपुलसुखदः रम्यः मार्गः वर्ण्यते येन गत्वा त्वं अपि-परमां निर्वृतिं लप्स्यसे । मध्ये मध्ये शिथिलचरणः (सन्) त्वं यत्र-क्षपाः नीत्वा प्रत्यूषेषु उच्छ्वसितहृदयः (सन्) भूरि हर्षं प्राप्स्यसे ।

अनुवाद– आपके लिए मैं परम सुखदायी मार्ग का वर्णन करता हूँ जिससे यात्रा करके आप भी परम आनन्द प्राप्त करेंगे । मार्ग में यत्र तत्र बीच बीच में थकावट से शिथिल चरण वाले आप रात्रि विश्राम करके प्रातः काल उल्लसित हृदय से पुनः यात्रा करके प्रचुर प्रसन्नता प्राप्त करेंगे ।

मार्गं श्रुत्वा तदनु सरलं मामकं प्रेमपूर्णं,
सन्देशञ्च श्रवणसुभगं श्रोष्यसि त्वं सुबाहो ।
तन्मे भावं कुशल ! बदरीशस्य पार्श्वे पवित्रं,
गत्वा प्रेम्णा विनतशिरसा हृयर्पय त्वं सुरम्यम् ॥ ९ ॥

अन्वय– सुबाहोः ! त्वं मार्गं श्रुत्वा तदनु सरलं प्रेमपूर्णं श्रवणसुभगं मामकं सन्देशं च श्रोष्यसि । कुशल ! तत् मे पवित्रं भावं त्वं बदरीशस्य पार्श्वे गत्वा प्रेम्णा विनत शिरसा अर्पय हि ।

अनुवाद– हे सुबाहु ! तुम मार्ग सुनने के बाद सरल, प्रीति पूर्ण कानों को सुखद मेरे उस पवित्र भाव को भगवान बदरीनाथ के पास जाकर प्रेम से शीश झुकाकर समर्पित करना ।

जागर्तीयं विमलविमला ब्रह्मवेला समन्तात्,
घण्टानादैः सुखदशयनं विश्वनीडं जहाति ।
गेहाग्रे ते कतिपयनरा भ्रष्टगायत्रमंत्रं,
वाद्यैः साकं कटुकवचनैः सम्पठन्तीह बन्धो ॥ १० ॥

अन्वय– बन्धो ! इयं विमलविमला ब्रह्मवेला समन्तात् जागर्ति विश्वनीडं घण्टानादैः सुखदशयनं जहाति ते गेहाग्रे कतिपय नराः भ्रष्ट गायत्र-मंत्रं वाद्यैः साकं कटुकवचनैः इह सम्पठन्ति ।

अनुवाद– हे बन्धु ! यह अत्यन्त विमल ब्रह्मवेला चारों ओर से उदय हो रही है । विश्वरूपी घोंसला घण्टानाद सुनकर अपनी सुखद निद्रा त्याग रहा है तुम्हारे घर के सामने कुछ मनुष्य भ्रष्ट उच्चारण से युक्त गायत्री मंत्र को वाद्य यन्त्रों के साथ कर्कशस्वर में इस समय गा रहे हैं ।

तेषां हित्वा कटुकमशिवं गायनं सम्प्रयाहि,
पत्न्या सार्द्धं शिवचरणयोर्दिव्यलोके पवित्रे ।
इन्द्रप्रस्थाद् द्रुततरगतौ वाहने सन्निरूढः,
शान्त्यर्थं के न हि ऋषिगणाः पर्वतान् संश्रयन्ते ॥ ११ ॥

अन्वय– तेषां कटुकं अशिवं गायनं हित्वा पत्न्याः सार्द्धं शिवचरणयोः पवित्रे दिव्यलोके इन्द्र प्रस्थाद् द्रुततरगतौ वाहने सन्निरूढः सन् । सम्प्रयाहि शान्त्यर्थं के ऋषिगणाः पर्वतान् न संश्रयन्ते हि ।

अनुवाद– उनके कठोर एवं अशिव गायन को त्यागकर धर्मपत्नी के साथ भगवान् शंकर पार्वती के पवित्र दिव्यलोक में चलो । दिल्ली से किसी द्रुतगामी वाहन में सवार होकर (चलो) क्योंकि शान्ति के लिए कौनसे ऋषि हैं जो पर्वतों का आश्रय नहीं लेते (अर्थात् सभी ऋषि पर्वतों का ही आश्रय लेते हैं)

तीर्त्वा सद्यः परमविशदां राजधानीं विचित्रां,
दृष्ट्वा शुष्कां मलिनमलिनां तत्र कालिन्दिकां तां ।
क्षोभो यस्ते व्यथयति मनस्तच्च दूरं विहातुं,
पूर्वं यात्रां कुरु कविमणे ! यामुनोत्र्याः पवित्राम् ॥ १२ ॥

अन्वय– कविमणे ! परम विशदां विचित्रां राजधानीं सद्यः तीर्त्वा त्वं तत्र शुष्कां मलिनमलिनां तां कालिन्दिकां दृष्ट्वा यः क्षोभः ते मनः व्यथयति तत् च दूरं विहातुं पूर्वं यामुनोत्र्याः पवित्रां यात्रां कुरु ।

अनुवाव– हे कविमणे ! परम विशाल चित्रमयी राजधानी दिल्ली को शीघ्र ही पार करके तुम वहां सूखी एवं मलिन उस कालिन्दी यमुना को देखोगे । उसे (देखकर) तुम्हें क्षोभ होगा उसी को दूर करने के लिए तुम पहिले यमुनोत्री की पवित्र यात्रा करो ।

मन्दोदर्या जनकनगरे मेरठेति प्रसिद्धे,
गत्वा पूर्वं भुवनजननीं श्रद्धया तां नमेस्त्वम् ।
"कालीपल्टन्निति" सुविशदे स्थानके या भवानी,
मन्दस्मेरा दिशति सततं मङ्गलं साधकानाम् ॥ १३ ॥

अन्वय-- त्वं मन्दोदर्याः जनकनगरे मेरठ इति प्रसिद्धे गत्वा पूर्वं श्रद्धया तां जननीं नमेः । या भवानी काली पल्टन् इति सुविशदे स्थानके मन्दस्मेरा सततं साधकानां मङ्गलं दिशति ।

अनुवाद-- मन्दोदरी के पिता मयदानव के नगर मयराष्ट्र (मेरठ) में जाकर तुम सर्व प्रथम जगज्जननी महाकाली को नमन करना जो भवानी "काली पल्टन" नामक विशाल मन्दिर प्रांङ्गण में मन्द स्मितानन से निरन्तर साधकों को मंगल प्रदान करती रहती हैं ।

उल्लंघ्यामुं जनपदमथो मित्र ! पूर्णं जलौघैः,
अन्नाद्यैश्च प्रचुरविभवैः संकुलं सर्वदिक्षु ।
अग्रे यात्वा सुरजनचितं गङ्गया क्षालितञ्च,
पश्य प्रेम्णा परमसुखदं श्री हरिद्वारतीर्थम् ॥ १४ ॥

अन्वय-- मित्र ! जलौघैः पूर्णं प्रचुरविभवै अन्नाद्यैः च सर्वदिक्षु संकुलं अमुं-जनपदं उल्लंघ्य अग्रे यात्वा सुरजनचितं गङ्गया क्षालितं परमसुखदं श्री हरिद्वार तीर्थं च प्रेम्णा पश्य ।

अनुवाद-- हे मित्र ! जल की प्रचुरता से पूर्ण वैभव एवं अन्नादि से समृद्ध सर्वत्र जन संकुल इस जनपद को पार करके आप देवगणों से भरे रहने वाले, गङ्गाजी के द्वारा प्रक्षालित परम सुखद श्री हरिद्वार तीर्थ को प्रेम से देखों ।

स्नात्वा स्नात्वा सुखदशिशिरे निर्मले गाङ्गपूरे,
चाञ्चल्यन्ते चलितमनसो दूरतां यास्यतीह ।
इत्थं भाति स्नपनविधिना यद्धि कालेयपापं,
सद्योमुक्तं व्रजति तरसा शुद्धगङ्गाजले मे ॥ १५ ॥

अन्वय-- सुखद शिशरे निर्मले गाङ्गपूरे स्नात्वा स्नात्वा ते चलितमनसः चाञ्चल्यं इह दूरतां यास्यति । स्नपनविधिना इत्थं भाति यत् हि मे कालेय पापं सद्यः मुक्तं तरसा शुद्ध गङ्गाजले व्रजति ।

अनुवाद– (वहां) सुखद शीतल निर्मल गङ्गा प्रवाह में पुनः-पुनः स्नान करके आपके चंचल मन की चंचलता दूर हो जाएगी । वहां स्नान करने से ऐसा लगेगा कि मेरे समस्त कलिजनित पाप शुद्ध गङ्गाजल में तेजी से विलीन हो रहे हैं ।

गत्वा नत्वा शिखरमहितां रज्जुयानेन चोर्ध्वं,
पुण्यां शुभ्रामचलकरुणामम्बिकां मानसाख्यां ।
गङ्गाकूले मुकुरजटितं पावनं धाम यायाः,
यत्राद्यापि स्फुरति मुदितो मानसो मे मयूरः ॥ १६ ॥

अन्वय– शिखरमहितां अचलकरुणां मानसाख्यां अम्बिकां पुण्यां शुभ्रां च रज्जुयानेन ऊर्ध्वं गत्वा नत्वा गङ्गाकूले मुकुरजटितं पावनं धाम यायाः यत्र मे मानसः मयूरः मुदितः (सन्) अद्यापि स्फुरति ।

अनुवाद-- यहां पर आप शिखर पर विराजमान पुण्या पर्वतकरुणारूपा श्री मनसादेवी के दर्शनार्थ रज्जुयान (उड़न खटोला) द्वारा जाना। तदन्तर कांच के टुकड़ों से निर्मित 'पावन धाम' नामक अद्भुत मन्दिर के भी दर्शन करना जहां कि मेरा मन मयूर अब भी नृत्य कर रहा है।

अत्युत्तुंगे नयनसुखदे भारते मन्दिरे त्वं,
गत्वोर्ध्वञ्च त्रिपथगमनाकूलदेशे स्थितं तद् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा विविधभवनैर्भ्राजमानं समन्ता-
दानन्दाख्यं नगरमधुना लप्स्यसे भूरिमोदम् ॥ १७ ॥

अन्वय– त्वं अत्युत्तुंगे नयनसुखदे भारते मन्दिरे गत्वा तद् त्रिपथगमना कूल देशे स्थितं ऊर्ध्वं दृष्ट्वा दृष्ट्वा च समन्तात् विविधभवनैः भ्राजमानं आनन्दाख्यं नगरं अधुना (दृष्ट्वा) भूरिमोदं लप्स्यसे ।

अनुवाद– इसके उपरान्त नेत्रों को सुखद भारतमाता के अत्यन्त ऊंचे मन्दिर में जाना। वहां से त्रिपथगा गंगा के तट पर स्थित अनेकानेक भवनों से सुशोभित आनन्द क्षेत्र हरिद्वार नगर के दर्शन से आपको महान आनन्द प्राप्त होगा।

किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुतरं पश्चिमे दिग्विभागे
यत्र स्फीतो वनपरिवृतो देहरादून संज्ञः ।
रम्यो देशो विलसतितरां सस्यगन्धाढ्यभूमिः
तस्योत्सङ्गे विरम सुखतो हे सखे त्वं क्षणेषु ॥ १८ ॥

अन्वय-- हे सखे–पश्चाद् किञ्चित् लघुतरं पश्चिमे दिग्विभागे व्रज यत्र वनपरिवृतः स्फीतः देहरादून संज्ञः रम्यः देशः सस्यगन्धाढ्य भूमिः विलसतितरां तस्य उत्सङ्गे क्षणेषु त्वं सुखतः विरम ।

अनुवाद- यहां से पश्चिम दिशा की ओर चलें जहां एक विशाल नगर देहरादून है यह अत्यन्त रमणीय है जहां वासमती चावल की गन्ध हरे खेतों से आती रहती है। उसकी गोद में कुछ क्षण रुककर विश्राम अवश्य करें।

शीतं पेय रुचिरमशनं तत्र जग्ध्वा पुनस्त्वं
सर्पाकारैर्नयनसुखदै रम्यमार्गैः प्रयाहि ।
यास्ते राज्ञी हिमनगपतेः सा मसूरीति नाम्नी
तस्याः क्रोडे परमसुखदे मोदपूरं लभस्व ॥ १९ ॥

अन्वय- तत्र शीतं पेयं रुचिरं अशनं जग्ध्वा त्वं पुनः सर्पाकारैः नयनसुखदैः रम्यमार्गैः प्रयाहि । हिमनगपते या राज्ञी आस्ते सा मसूरी नाम्नी (अस्ति) तस्याः क्रोडें परमसुखदे मोदपूरं लभस्व ।

अनुवाद- यहां शीतल पेय या इच्छित जलपान कर पुनः सर्पाकार एवं देखने में अत्यन्त सुन्दर मार्गों से प्रयाण करो। आगे हिमालय की रानी के नाम से मंसूरी नामक नगरी है जिसकी परम सुखद गोद में आप आनन्द सिन्धु में गोते लगाइए।

तुंगैः श्रृंगैः सघनवनकैर्मेघखण्डैरुपेतां,
उच्चैर्नीचैर्ललितभवनैः शोभितां तां मसूरीम् ।
विद्युद्दीपैर्विलसिततनुं वीक्ष्य नूनं रजन्यां
स्वर्गानन्दं त्यजति सहसा भावना दर्शकानाम् ॥ २० ॥

अन्वय- तुंगै श्रृंगैः सघनवनकैः मेघखण्डैः उपेतां उच्चैः नीचैः ललितभवनैः शोभितां विद्युद्दीपैः विलसिततनुं रजन्यां तां मसूरीं वीक्ष्य दर्शकानां भावना सहसा स्वर्गानन्दं त्यजति !

अनुवाद- यहां उत्तुंग शिखरों सघनवनों, मेघ खण्डों एवं ऊंचे नीचे सुन्दर भवनों से सुशोभित सुन्दर मंसूरी को, जो कि विद्युद्दीपों की आभा से झिलमिलाती रहती हैं देखकर रात्रि में यात्रियों की भावना एक क्षण को स्वर्ग के आनन्द को भी त्याग देती है।

पृष्ठेऽश्वानां विविधवसनैश्चित्रकैश्छन्नदेहाः,
आंग्लां वाणीं वचनचतुरा भान्ति रम्या रमण्यः ।
शोभापूर्णेष्वमितविभवेष्वापणेषूर्णवासां-
सीह त्वं भो निजसहचरीमण्डनार्थं लभस्व ॥ २१ ॥

अन्वय- (यत्र) अश्वानां पृष्ठे चित्रकैः विविध वसनैः छन्नदेहा आंग्लां वाणीं वचन चतुराः रम्याः रमण्यः भान्ति भोः ! शोभापूर्णेषु अमित विभवेषु आपणेषु निजसहचरी मण्डनार्थं त्वं ऊर्णवासांसि लभस्व ।

अनुवाद- मित्र ! यहां घोड़े की पीटपर रंगविरंगे परिधानों में सजी कुशलता पूर्वक अंग्रेजी बोलती हुई सुन्दर रमणियां सुशोभित होती हैं। अमित वैभव वाले शोभा पूर्ण बाजारों से आप अपनी सहचरी के लिए ऊनी वस्त्र अवश्य खरीदें।

रात्रौनूनं रमणकुशलस्त्वं हि लब्ध्वात्र सौख्यम्,
प्रातः काले सुखदपवने मुक्तनिद्रः प्रयाहि ।
ईषद् गत्वा शिखरपतिते कैम्पटी निर्झरेऽस्मि-
न्नूनं स्नात्वा प्रमुदितमनास्त्वं भवेरत्र बन्धो ॥ २२ ॥

अन्वय- रात्रौ रमण कुशलः त्वं नूनं अत्र सौख्यं लब्ध्वा सुखदपवने प्रातः काले मुक्तनिद्रः प्रयाहि । ईषद्गत्वा अस्मिन् शिखरिपतिते कैम्पटी-नाम्नि निर्झरे स्नात्वा मित्र त्वं अत्र नूनं प्रमुदितमना भवेः ।

अनुवाद- मित्र ! आप रमण कुशल हैं । रात्रि में सुख पूर्वक निवास करके प्रातः काल जब सुखदायी पवन चल रहा हो निद्रा त्याग करके चल पड़िए । यहां से थोड़ी दूर पर कैम्पटी फाल नामक स्थान है । यहां आनन्द पूर्वक स्नान करके आप प्रसन्न हो जायेंगे ।

तत्र स्नात्वा प्रचल सुखतः पर्वतोपत्यकायां,
अग्रे गत्वा हरितजलकैः क्लिन्नगात्रीं पवित्राम् ।
दृष्ट्वा मोदं ललितयमुनां प्राप्स्यसे भूरिभूरि,
सेतुं तीर्त्वा द्रुततरगतौ याहि भो यामुनोत्रीम् ॥ २३ ॥

अन्वय- भोः । तत्र स्नात्वा सुखतः पर्वतोपत्यकायां प्रचल अग्रे गत्वा हरित जलकैः क्लिन्न गात्रीं पवित्रां ललितयमुनां दृष्ट्वा भूरिभूरि मोदं प्राप्स्यसे । सेतुं तीर्त्वा द्रुततरगतौ यामुनोत्रीं याहि ।

अनुवाद- हे मित्र ! वहां स्नान करके सुखपूर्वक आप पर्वत की उपत्यका में (घाटी) चलें । आगे जाकर श्यामवर्ण वाले जल से परिपूर्ण एवं पवित्र सुन्दर यमुना को देखकर बहुत ही आनन्द प्राप्त करेंगे । यमुना का पुल पारकर के तीव्रगति से यमुनोत्री की ओर चलें ।

अत्युच्चैर्वै विविधतरुभिर्मण्डितोऽसौ हिमाद्रिः,
वामे भागे कलकलकरी सूर्यपुत्री पवित्रा
मध्ये मध्ये श्रमविरचिता कर्षकाणां निवासाः,
सर्वं दृश्यं कविकुलमणे वर्तते काव्यपूर्णम् ॥ २४ ॥

अन्वय– अत्युच्चैः विविधतरुभिः मण्डितः असौ हिमाद्रिः वामे भागे कलकलकरी पवित्रा सूर्यपुत्री मध्ये मध्ये श्रमविरचिताः कर्षकाणां निवासाः कविकुलमणे सर्वंदृश्यं वै काव्यपूर्णं वर्तते।

अनुवाद– ऊंचे ऊंचे नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित यह हिमालय, बायीं ओर कल-कल शब्द से भरी सूर्यपुत्री यमुना की पवित्र धारा, बीच-बीच में श्रमकरके रचे गए कृषकों के निवास यह सारे दृश्य हे कविकुलमणि काव्य पूर्ण हैं।

होरायुग्मं प्रचल सुकवे चोत्तरे दिग्विभागे,
द्रक्ष्यस्यग्रे पथिकबहुलं श्रीनवग्राम संज्ञं।
तत्रस्थित्वा कतिपयपलैरध्वखेदं नयेथाः
भूयो गन्तुं दृढतरपदैर्निश्चयेनैव भूयाः ॥ २५ ॥

अन्वय– सुकवे ! होरायुग्मं उत्तरे दिग्विभागे प्रचल अग्रे पथिकबहुलं श्री नवग्रामसंज्ञं द्रक्ष्यसि तत्र स्थित्वा कतिपयपलैः अध्वखेदं नयेथाः भूयः दृढतरपदैः गन्तुं निश्चयेन एव भूयाः।

अनुवाद– हे सुकवि ! दोपहर तक उत्तर की ओर चलने पर आगे यात्रियों से भरा नौगांव नामक स्थान देखोगे। वहां कुछ देर ठहर कर मार्ग का श्रम दूर करना और पुनः दृढतापूर्वक आगे चलने के लिए निश्चय करना।

बर्कोटाख्ये विभवभरिते रम्यरम्ये पुरे त्वं,
सद्यो गत्वासघनविटपच्छायया संवृतः स्याः
अन्तस्तापं दलति झटिति स्रोतसां तद्धिमाम्भः,
दूरीभूतो भवति सहसा मार्गखेदः समेषाम् ॥ २६ ॥

अन्वय– त्वं विभवभरिते रम्यरम्ये बर्कोटाख्ये पुरे गत्वा सद्यः सघन विटपच्छायया संवृतः स्याः । स्रोतसां तद् हिमाम्भः अन्तस्तापं झटिति दलति समेषां मार्ग खेदः सहसा दूरीभूतो भवति ।

अनुवाव– आगे वैभव से परिपूर्ण बरकोट नामक सुरम्य नगर में जाकर आप घने वृक्षों की छाया से ढक जायेंगे । झरनों का बर्फीला पानी एक क्षण में अन्तस्ताप को दूर कर देता है जिससे सभी की मार्ग में चलने की थकान अचानक ही दूर हो जाती है ।

मध्याह्ने भोः पवनसुतकृच्चट्टिकां प्राप्स्यसे त्वं
शीतो वायुः स्पृशति वदनञ्चागतो यो हिमाद्रेः ।
त्यक्त्वा सर्वं नगरविभवं दण्डपाणिर्भवेर्भोः
पादातिः सन् व्रज कविवर त्वं पुनस्तीर्थभूमिम् ॥ २७ ॥

अन्वय-- भोः त्वं मध्याह्ने पवनसुतकृतचट्टिकां प्राप्स्यसे (अत्र) यः हिमाद्रेः आगतः शीतः वायुः वदनं स्पृशति । भो. कविवर त्वं सर्वं नगर विभवं त्यक्त्वा दण्डपाणिःभवेः (ततः) पादातिः सन् पुनः तीर्थ–भूमिं व्रज

अनुवाद-- हे मित्र ! तुम मध्याह्न के समय हनुमान चट्टी पहुँचोगे । यहां हिमालय से आता हुआ शीत पवन आपके मुख का स्पर्श करता है । हे कविवर ! यहां आप समस्त नगरीय वैभव छोड़कर दण्डपाणि हो जाइए (अर्थात सामान छोड़कर छड़ी ले लीजिये) और पैदल होकर तीर्थ भूमि की ओर चलिए ।

कालिन्द्यास्त्वं विमलपुलिने यष्टिहस्तो यदा भोः
यास्यस्युच्चावचपथगणे श्रीरमासंयुतश्च,
गायन्मन्दं व्रजपतिकथा मित्र शोभा त्वदीया
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम् ॥ २८ ॥

अन्वय-- भोः ! यदा त्वं यष्टिहस्तः कालिन्द्याः विमलपुलिने उच्चावच पथगणे श्री रमासंयुतः यास्यसि (तदा) मित्र ! व्रजपति कथाः गायन् त्वदीया शोभा नूनं अमरमिथुनप्रेक्षणीयां अवस्थां यास्यति ।

अनुवाद-- हे मित्र ! जिस समय हाथ में लाठी लिए यमुना के विमल पुलिन (तट) पर ऊंचे नीचे रास्ते में श्रीमती रमादेवी (शुक्ल जी की धर्मपत्नी) के साथ चलोगे और धीरे धीरे श्रीकृष्ण की कथा गाओगे उस समय आपकी दशा देवताओं की जोड़ियों द्वारा दर्शनीय होगी ।

किञ्चिद् गत्वा स्फटिकविशदं स्रोतसां वारिपूरं
पीत्वा पीत्वा मुदितहृदयो नारदीं चट्टिकाञ्च,
सम्प्राप्य त्वं विरम सुकवे शैलखण्डे कुतश्चित्
दर्शं दर्शं पुलिनसुषमां त्वं हि मुग्धस्तदा स्याः ॥ २९ ॥

अन्वय– सुकवे ! त्वं किञ्चिद् गत्वा स्फटिकविशदं स्रोतसां वारिपूरं पीत्वा पीत्वा मुदितहृदयः (सन्) नारदीं चट्टिकां च सम्प्राप्य कुतश्चिद् शैल खण्डे विरम । तदा त्वं हि पुलिनसुषमां दर्शं दर्शं मुग्धःस्याः ।

अनुवाद– सुकवे ! थोड़ी दूर चलकर स्फटिक के समान स्वच्छ झरनों का जल पी पी कर प्रसन्न हृदय से नारद चट्टी को प्राप्त कर किसी चट्टान पर विश्राम करना । उस समय वहां नदी के तट की सुषमा को देखदेख कर मुग्ध हो जाओगे ।

तत्र स्थित्वा कतिपयकलाः पान्थ याहि त्वमग्रे,
तत्र द्रक्ष्यस्युपलविषमे पुष्पचट्टीं सुरम्याम् ।
झिल्लीशब्दैर्मुखरितदिशां सीत्कृतैः शीतवायोः
पूर्णा चेयं विकचकुसुमैः सार्थनामा सदास्ते ॥ ३० ॥

अन्वय-- हे पान्थ ! तत्र कतिपयकलाः स्थित्वा त्वं अग्रे याहि । तत्र उपलविषमे सुरम्यां पुष्पचट्टीं द्रक्ष्यसि । झिल्लीशब्दैः मुखरितदिशां शीतवायोः सीत्कृतैः विकचकुसुमैः पूर्णा च इयं सदा सार्थनामा आस्ते ।

अनुवाद- हे पथिक! कुछ क्षण वहां रुककर आगे चलो आगे चट्टानों के कारण ऊंची नीची सुन्दर फुलचट्टी देखोगे । झिल्ली के मधुर झंकार से, ठण्डी वायु के सीत्कार से और खिले हुए नानाविध कुसुमों से भरी यह स्थली सदैव सार्थक नाम वाली रहती है ।

शोभां दृष्ट्वा तदनु पथिक ! त्वं व्रजेरग्रतो हि
क्रोशं गत्वास्तमनसमये प्राप्स्यसे स्थानमेकम् ।
यज्जानक्याः शुभगुणगणं वर्ण्यते तच्च चट्टी
जानक्याख्या हिमगिरितटेऽवस्थिता काप्यपूर्वा ॥ ३१ ॥

अन्वय- पथिक ! शोभां दृष्ट्वा तदनु त्वं अग्रतः व्रजेः हि । (तदा) क्रोशं गत्वा अस्तमनसमये एकं स्थानं प्राप्स्यसे यद् चट्टी जानक्याः शुभगुणगणं वर्ण्यते तत् जानक्याख्या कापि अपूर्वा हिमगिरितटे अवस्थिता ।

अनुवाद- पथिक ! शोभा देखकर आप पुनः आगे चलें । एक क्रोश (कोस) तक चलकर प्रायः सायंकाल के समय जानकी के सद्गुणों का वर्णन करने वाली जानकी चट्टी नामक स्थान को प्राप्त करोगे । यह जानकी चट्टी हिमालय के तटपर किसी अपूर्व शोभा की तरह स्थित है ।

रात्रिश्शुभ्रा शिथिलचरणेनात्र नेया त्वया भोः
पत्न्या सार्द्धं शिशिरसुखदे तूलराशौ सुखेन
प्रत्यूषे त्वं प्रचल सुकवे यामुनोत्र्याः सुधाम्नि
मार्गं घोरं श्रमबहुलकं वर्तते कष्टपूर्णम् ॥ ३२ ॥

अन्वय- भोः ! त्वया शिथिलचरणेन अत्र शुभ्रा रात्रिः पत्न्याः सार्द्धं शिशर सुखदे तूलराशौ सुखेन नेया । प्रत्यूषे त्वं यामुनोत्र्या सुधाम्नि प्रचल सुकवे ! मार्गं घोरं श्रमबहुलकं कष्टपूर्णं च वर्तते ।

अनुवाद- मित्र ! थके हुये पैरों वाले आप यहां की चांदनी रात को पत्नी के साथ रजाई वस्त्र में छुपकर बिताना । हे सुकबि ! उषःकाल में आप यमुनोत्रीं के सुन्दर धाम के लिए चलें । आंगे का मार्ग व ठिन तथा अत्यन्त श्रम साध्य एवं कष्टपूर्ण है

पश्यन्बन्धो ! हिमगिरिशिखा मार्ग कष्टं न ते स्यात्
शम्भुं स्मृत्वा कथमपि सखे वक्रमार्गांश्च सद्यः
गत्वा प्रेयः परमसुखदं यामुनोत्र्याश्च धाम
दृष्ट्वा नूनं जननसुफलं लप्स्यसे मानवस्य ॥ ३३ ॥

अन्वय- बन्धो ! हिमगिरिशिखाः पश्यन् ते मार्गं कष्टं न स्यात् शम्भुं स्मृत्वा सद्यः कथमपि वक्रमार्गान् च गत्वा हे सखे ! यामुनोत्र्याः प्रेयः परम सुखदं च धाम दृष्ट्वा नूनं मानवस्य जनन सुफलं लप्स्यसे ।

अनुवाद- बन्धुवर ! हिमालय की चोटियों को देखते रहने से मार्ग कष्ट आपको नहीं होगा । शिवजी का स्मरण करके जैसे तैसे टेढ़े मेढ़े रास्तों को (बीस मोड़ों को) पार कर आप हे सखे यमुनोत्री के परम सुखद धाम का दर्शन कर मानव जन्म का साफल्य प्राप्त करेंगे ।

कल्लोलैर्या विनतवदना हेमकूटात्पतन्ती
हैमाद्रौ सा पितरि सदने बाल्यभावं भजन्ती
क्रीडारामे मुखरमुखरा रोदसी पूरयन्ती
कालिन्द्येषा कलिमलहरा वर्ततेऽद्यापि वन्द्या ॥ ३४ ॥

अन्वय- या कल्लोलैः विनतवदना हेमकूटात् पतन्ती पितरि सदने हैमाद्रौ सा बाल्यभावं भजन्ती क्रीडारामे मुखरमुखरा रोदसी पूरयन्ती एषा कालिन्दी कलिमलहरा अद्य अपि वन्द्या वर्तते।

अनुवाद- जो यमुना चंचल लहरों से नीचे गिरती हुई, पिता के घर हिमालय में बाल्यावस्था को धारण करती सी, अपने खेलने के बगीचे में मानो चिल्लाते हुए पृथ्वी आकाश को भरती सी दिखाई देती है, वह कलिमलहारिणी कालिन्दी आज भी वन्दनीया है।

शैत्याधिक्यान्न हि मम गृहे कोऽपि भूयाज्ज्वरार्त्तः,
कालिन्दी सा कलितहृदयाभावमित्थं दधाना
उष्णां धारां विमलनिवहां सारयच्छैलखण्डात्
उष्णे नीरे परमसुखदे नन्दितः स्यास्तदीये ॥ ३५ ॥

अन्वय– शैत्याधिक्यात् मम गृहे कोऽपि ज्वरार्त्तः नहि भूयात् (इति) कलित हृदया कालिन्दी इत्थं भावं दधाना शैलखण्डात् विमलनिवहां उष्णां धारां सारयत्। तदीये उष्णे नीरे परम सुखदे नन्दितः स्याः

अनुवाद– ठण्ड की अधिकता से मेरे घर में कोई बीमार न हो जाए मानो हृदय में ऐसा विचार कर के ही कालिन्दी ने यहां पर्वत शिखर से एक गर्म जल की धारा निकाल दी है उसके गर्म पानी में जो कि परम सुख देने वाला है स्नान करके आनन्दित होइये।

तत्र स्थित्वा युगलघटिकामात्रमेवैहि बन्धो
सम्यग्रूपे रचय सुविधिं पूजनं यामुनोत्र्याः
क्षिप्रं नीचैरवतरतु भोः शेषयात्रार्थमेव
वर्षाकालो भवति दिवसस्यार्द्धभागे नगेषु ॥ ३६ ॥

अन्वय– बन्धो ! तत्र युगलघटिका मात्रं एव स्थित्वा एहि । सम्यक्रूपे सुविधिं यामुनोत्र्याः पूजनं रचय । भोः ! शेषयात्रार्थं एव क्षिप्रं नीचैः अवतरतु नगेषु दिवसस्य अर्द्धभागे वर्षाकालः भवति ।

अनुवाद-- हे बन्धु वहां दो घड़ी तक ठहरकर चल पड़ो । भली भांति यमुनोत्री जी का पूजन करना । शेष यात्रा के लिए जल्दी जल्दी नीचे उतरो क्यों कि पहाड़ों पर दिवस के अपराह्न में प्रायः वर्षा होने लगती है ।

मार्गे तीव्रा तव गतिरियं स्याद्धि नूनं सुबाहो !
सन्नद्धस्त्वं प्रचलशनकैः कृच्छ्रमार्गे तदानीम् ।
अत्युत्तुंगे शिखरिशिखरे ह्यत्र कष्टं प्रयाणं
प्रत्यावर्त्ते तदपि विपुला मार्गपीडा भवन्ति ॥ ३७ ॥

अन्वय– सुबाहो ! मार्गे तव इयं गतिः नूनं हि तीव्रा स्यात् (ततः)त्वं सन्नद्धः (सन्) कृच्छ्र मार्गे तदानीं शनकैः प्रचल (यतोहि) अत्युत्तुंगे शिखरि-शिखरे अत्र प्रयाणं कष्टं हि प्रत्यावर्ते तदपि विपुला मार्गपीडाः भवन्ति ।

अनुवाद– हे सुबाहु ! उतरते समय मार्ग में आपकी गति निश्चय ही तीव्र हो जाएगी (गुरुत्वाकर्षण के कारण) अतः आप सावधानी पूर्वक उस कठिन मार्ग पर धीरे धीरे चलें । हिमालय के अत्यन्त उन्नत शिखरों पर चढ़ने में जितना कष्ट होता है उतरने में उससे भी ज्यादा होता है ।

सम्प्राप्य त्वं पुनरपि शुभां मारुतेश्चट्टिकां वै
स्वीये याने शिथिलचरणो हृष्टसर्वान्तरात्मा
भावाकाशे ललितसुभगां ताञ्च शोभां प्रकल्प्य
स्वात्मानं भोः परमसफलं मन्यसे लोकमध्ये ॥ ३८ ॥

अन्वय– त्वं पुनः अपि शुभां मारुतेः चट्टिकां सम्प्राप्य हृष्टसर्वान्तरात्मा (सन्) शिथिलचरणः स्वीये याने भावाकाशे ललितसुभगां तां शोभां च प्रकल्प्य भोः लोकमध्ये स्वात्मानं परमसफलं मन्यसे ।

अनुवाद– तुम पुनः पवित्र हनुमान चट्टी को प्राप्त करके प्रसन्न अन्तरात्मा से पैरों के खूब थके होने पर भी अपने वाहन (कार आदि) में बैठकर भावों के आकाश में यमुनोत्री की उस परम रमणीय शोभा की कल्पना करके संसार में अपने को धन्य मानोगे ।

सायंकालेऽपनय पदयोस्त्वं श्रमं कष्टपूर्णं,
बर्कोटस्याप्रतिमसुखदे सर्वकारीयसौधे ।
श्रान्ते देहे परमरमणी स्याद्धि ते गाढनिद्रा
यस्यां लीनस्तृणमिव जगन्मानः संजहाति ॥ ३९ ॥

अन्वय-- त्वं सायंकाले बर्कोटस्य अप्रतिमसुखदे सर्वकारीय सौधे कष्टपूर्णं पदयोः श्रमं अपनय । श्रान्ते देहे परमरमणी गाढनिद्रा ते स्यात् हि यस्यां लीनः मानवः तृणमिव जगत् संजहाति ।

अनुवाद-- तुम सायंकाल में बरकोट के परम सुखद सरकारी अतिथिनिवास (गेस्ट हाउस) में अपने चरणों की कष्टदायी थकान दूर करना । देह के थकने से आपको अति सुन्दर गहरी दिद्रा आयेगी जिसमें लीन होकर मानव संसार को तिनके की भांति छोड़ देता है ।

प्रातःकाले मधुरमधुरो गन्धवाहो द्रुमाणां
मन्दैर्मन्दैर्लघुजलकणैः स्वप्रवाहैश्च नित्यम्
गात्रं सर्वं स्पृशति मृदुलो मोदकारी प्रियश्च
तस्य स्पर्शं रुचिरसुखदं प्राप्य निद्रां विमुञ्च ॥ ४० ॥

अन्वय– प्रातःकाले मधुरमधुरः द्रुमाणां गन्धवाहः मन्दैःमन्दैः लघु जलकणैः स्वप्रवाहैः नित्यं सर्वं गात्रं स्पृशति सः मृदुलः मोदकारी प्रियः च तस्य रुचिरसुखदं स्पर्शं प्राप्य निद्रां विमुञ्च

अनुवाद– प्रातः काल के समय मधुर–मधुर वृक्षों की गन्ध धारण करने वाली वायु नदी के जल कणों को अपने प्रवाह में समेटे मन्द–मन्द चलती हुई आपके शरीर का स्पर्श करती है। उसका वह स्पर्श बड़ा कोमल प्रसन्नतादायी एवं प्रिय होता है उसके सुखद स्पर्श को प्राप्त कर निद्रा त्यागिये।

युक्तो भूया झटिति गमने तीर्थके त्वं द्वितीये,
गंगोत्तर्याः परमरमणे दर्शनार्थं सुरम्ये।
भागीरथ्याः कलिमलहरे दिव्यतीरे त्वदीया,
यात्रा पुण्या नयनरुचिरानन्ददात्री भवित्री ॥ ४१ ॥

अन्वय– त्वं परमरमणे सुरम्ये गंगोत्तर्याः द्वितीये तीर्थके दर्शनार्थं गमने झटिति युक्तः भूयाः। भागीरथ्याः कलिमलहरे दिव्यतीरे त्वदीया नयन रुचिरा आनन्ददात्री पुण्या यात्रा भवित्री।

अनुवाद– तुम परम रमणीय सुरम्य गंगोत्री नामक द्वितीय तीर्थ की यात्रा के लिए शीघ्र ही तैयार हो जाना यहां भागीरथी के कलिमलहारी दिव्य तट के किनारे आपकी नयन सुखद आनन्ददायिनी पवित्र यात्रा होगी।

वर्कोटातो द्रुततरगतौ याहि पूर्वां दिशं त्वं,
मध्ये मार्गं विटपबहुलं वर्ततेऽस्मिन्हिमाद्रौ ।
अत्युत्तुंगैर्गगनतलगैः वृक्षकैः शृंगकैश्च
रम्यं प्रान्तं मुदितमनसा द्रक्ष्यसीह क्षितौ त्वम् ॥ ४२ ॥

अन्वय– त्वं वर्कोटातः द्रुततरगतौ पूर्वां दिशं याहि । अस्मिन् हिमाद्रौ मध्ये मार्गं विटपबहुलं वर्तते । इह त्वं अत्युत्तुंगैः गगनतलगैः वृक्षकैः शृंगकैः च रम्यं प्रान्तं क्षितौ मुदितमनसा द्रक्ष्यसि ।

अनुवाद– तुम बरकोट से तीव्र गति से पूर्व दिशा को ओर चलो । यहां हिमालय का मार्ग बीच में घने वृक्षों से भरा हुआ है । यहां तुम ऊंचे ऊंचे गगन स्पर्शी वृक्षों एवं पर्वत शिखरों के द्वारा रमणीय पर्वत प्रान्त को प्रसन्न मन से पृथ्वी पर अवस्थित देखोगे ।

भूर्जं वृक्षं हरितहरितं देवदारुं महोच्चं
बांजं फुल्लं सुललितरुचिं वीक्ष्य चित्तं कवे ते
काव्यं कर्त्तुं सरस ! भविता सूनमेवात्र बन्धो
दृष्ट्वा फुल्लां प्रकृतिवनितां को न गातुं प्रसक्तः ॥ ४३ ॥

अन्वय– हरितहरितं भूर्जं वृक्षं महोच्चं देवदारुं फुल्लं बांजं सुललितरुचिं वीक्ष्य ते चित्तं सरस ! काव्यं कर्त्तुं भविता । बन्धो ! फुल्लां प्रकृति वनितां दृष्ट्वा कः न गातुं प्रसक्तः (भवति)

अनुवाद– हरे भोज वृक्ष अत्यन्त ऊंचे देवदारु प्रफुल्लित बांज के सुन्दर लगने वाले वृक्षों को देखकर हे सरस कवि ! आपका चित्त काव्य रचने को होने लगेगा । मित्र ! प्रफुल्लित प्रकृतिरूपी वनिता को देखकर कौन नहीं गाने लगता है ।

ग्रामं दृष्ट्वा सुलघुतनुभृत् ब्रह्मखालेति पुण्यं
किञ्चित्पश्चादुपलबहुलं द्रक्ष्यसि त्वं धरासूम् ।
हैमाद्रेर्यः सरसहरिते क्रोडमध्ये निविष्टो
ग्रामो दिव्यो नयनरुचिरः संस्थितो गाङ्गतीरे ॥ ४४ ॥

अन्वय- सुलघुतनुभूत् ब्रह्मखाल इति पुण्यं ग्रामं दृष्ट्वा किञ्चिद् पश्चाद् उपलबहुलं धरासूं त्व द्रक्ष्यसि । यः हैमाद्रेः सरसहरिते क्रोडमध्ये निविष्टः नयनरुचिरः दिव्यः ग्रामः गाङ्गतीरे संस्थितः (अस्तीतिशेषः)

अनुवाद- मार्ग में अत्यन्त छोटे आकार के ब्रह्मखाल नामक पवित्र ग्राम को देखकर आगे थोड़ी दूर चलने पर चट्टानों से भरे हुए धरासू-नामक स्थान को देखोगे। जो हिमालय की हरी भरी गोद में बैठा नेत्र सुखदायी दिव्य गांव गंगा के उत्तरी तट पर स्थित है।

अत्रागत्य प्रचल सुकवे ! पूर्वके दिग्विभागे
भागीरथ्या हरिततटके मुग्धभावेन शीघ्रम् ।
द्रक्ष्यस्यग्रे विशदविभवामुत्तरां काशिकां त्वं
यस्यां गत्वा पुनरपि जनो वांछतीहैव जन्म ॥ ४५ ॥

अन्वय- सुकवे ! अत्र आगत्य भागीरथ्या हरिततटके मुग्धभावेन पूर्वके दिक्विभागे शीघ्रं प्रचल । अग्रे त्वं विशद विभवां उत्तरां काशिकां द्रक्ष्यसि यां गत्वा जनः पुनः अपि इह एव जन्म वांछति ।

अनुवाद- हे सुकवि ! यहां आकर भागीरथी के हरे भरे तट पर मुग्ध भाव से देखकर पूर्व की ओर शीघ्रता से चलो। आगे वैभव से परिपूर्ण उत्तर काशी नामक नगरी को देखोगे जहां जाकर मनुष्य पुनः इसी स्थान पर जन्म लेने की इच्छा करता है।

भागीरथ्या उभयतटयोरुच्चकैर्या निवासै-
र्यक्षं लोकं हसति मुदिता वैभवैः पूरिता च
तस्याः क्रोडे विरम सुकवे ! भोजनादिप्रकल्प्य
गंगोत्तर्याः परमरमणीं गच्छ भो तीर्थभूमिम् ॥ ४६ ॥

अन्वय- भोः सुकवे ! या भागीरथ्याः उभयतटयोः उच्चकैः निवासैः वैभवैः पूरिता च मुदिता यक्षं लोकं हसति तस्याः क्रोडे विरम। भोजनादि प्रकल्प्य गंगोत्तर्याः परमरमणीं तीर्थ भूमि गच्छ।

अनुवाद- हे सुकवि ! जो उत्तर काशी भागीरथी के दोनों तटों पर ऊंचे ऊंचे भवनों एवं वैभवो से पूर्ण बसी हुई है और प्रसन्नता से यक्ष लोक (कुबेर नगरी) का मानों उपहास सा करती है। तुम उसकी गोद में विश्राम करना। यहां भोजनादि करके गंगोत्तरी की परम रमणीय तीर्थ भूमि की ओर चलो।

स्वर्गानन्दा विटपबहुला भाति नेत्राभिरामा
गंगादेव्याः सरसपयसा सेचिता देवभूमिः
मध्ये मध्ये हिमशिखरतः स्यन्दमानानि स्रोतां-
सि त्वं दृष्ट्वा कविवर भवेः क्षिप्रमेव प्रहृष्टः ॥ ४७ ॥

अन्वय- कविवर ! गंगादेव्याः सरसपयसा सेचिता विटपबहुला स्वर्गानन्दा देवभूमिः नेत्राभिरामा भाति। मध्येमध्ये हिमशिखरतः स्यन्दमानानि स्रोतांसि दृष्ट्वा त्वं क्षिप्रं प्रहृष्टः भवेः।

अनुवाद- कविवर ! गगा देवी के सरस जल से सिंचित वृक्षों से भरी स्वर्ग का आनन्द देने वाली देव भूमि नेत्र के लिए अभिराम है। बीच में थोड़ी-थोड़ी दूर पर हिम शिखरों से झरते हुए झरनों को देखकर तुम तुरन्त ही प्रसन्न हो उठोगे।

सर्पाकारैः पथविचलनैर्ग्रामभूमीर्विलङ्घ्य
मन्नेर्याख्यं कलकलयुतं चात्रभट्वाडिकाञ्च
झालाग्रामं प्रलघुविभवं वीक्ष्य नूनं कवे ते
चित्तारामे कलितकविताभावना सम्भवित्री ॥ ४८ ॥

अन्वय- कवे ! सर्पाकारैः पथविचलनैः ग्रामभूमीः विलङ्घ्य कलकलयुतं मन्नेरी आख्यं भट्वाडिकां च (विलङ्घ्य) प्रलघुविभवं झालाग्रामं वीक्ष्य ते चित्तारामे कलितकविताभावना सम्भवित्री ।

अनुवाद- हे कवि ! सर्पिल रास्तों से ग्रामों की भूमि को लांघते हुए कल-कल शब्द से भरे मनेरी बांध को तत्पश्चात् भटवाड़ी ग्राम को लांघकर आप जब दरिद्रता से भरे झालाग्राम को देखोगे तो आपके चित्तरूपी उपवन में कविता की भावना फूट पड़ेगी ।

अत्रस्थस्त्वं शुभहिमगिरेः शुभ्रशृंगाणि नूनं
दृष्ट्वा दृष्ट्वा चकितनयनैर्मोदभावे निमग्नः
गायन्नुच्चैः सरसकवितां भाति मे भारताख्यां
दिव्यं हर्षं कविकुलमणे लप्स्यसे गायनस्य ॥ ४९ ॥

अन्वय- कविकुलमणे ! अत्रस्थः त्वं शुभ हिमगिरेः शुभ्रशृंगाणि दृष्ट्वा दृष्ट्वा नूनं चकितनयनैः मोदभावे निमग्नः (सन्) भाति मे भारताख्यां सरसकवितां उच्चैः गायन् गायनस्य दिव्यं हर्षं लप्स्यसे ।

अनुवाद- कविकुलमणि ! यहां खड़े होकर तुम पवित्र हिमालय के शुभ्र शिखरों को देखकर चकित नयनों से प्रसन्नता में डूब जाओगे । और उस समय "भाति मे भारतम" (शुक्ल जी की कालजयी रचना) नामक सरस कविता को गाते हुए गायन के दिव्य हर्ष को प्राप्त करोगे ।

झालाग्रामादवनतगतिस्त्वं यदा सेतु तीरे
भागीरथ्याः प्रचुरसलिलं तर्तुकामो व्रजेः भोः ।
हर्षिल्लाख्यं सुरपुरगतं नन्दनं काननं वा
स्वर्गारामं वचनविमुखो द्रक्ष्यसीहैव लोके ॥ ५० ॥

अन्वय- त्वं झालाग्रामात् अवनतगतिः (सन्) यदा सेतुतीरे भागीरथ्याः प्रचुरसलिलं तर्तुकामः व्रजेः (तदा) हर्षिल्लाख्यं स्वर्गारामं सुरपुरगतं नन्दनं काननं वा वचनविमुखः इह एव लोके द्रक्ष्यसि ।

अनुवाद- तुम झाला गांव से नीचे की ओर घाटी में उतरोगे जहां से नदी के पुल की ओर भागीरथी के प्रवल प्रवाह को पार करने के लिए जाओगे वहां पर स्वर्ग के उद्यान नन्दन वन की भांति सुन्दर वनों से आच्छादित हरसिल ग्राम को देखकर मौन होकर इस लोक में ही स्वर्गीय आनन्द को देखोगे ।

घोरं शब्दं रचयति शुभा प्रस्तरैरुच्छलन्ती
भागीरथ्याश्चपलगमना वारिधारा समन्तात्
पूर्वं जह्नोः सुखदसदनं प्लावितं चात्र बन्धो
तेनैवेयं वहति पदवीं जाह्नवीशब्दवाच्याम् ॥ ५१ ॥

अन्वय- बन्धो भागीरथ्याः चपलगमना शुभा वारिधारा समन्तात् प्रस्तरैः उच्छलन्ती घोरं शब्दं रचयति । पूर्वं जह्नोः सुखदसदनं अत्र प्लावितं तेन एव इयं जाह्नवी शब्द वाच्यां पदवीं वहति ।

अनुवाद- हे बन्धु ! भागीरथी की चंचलता से बहने वाली जल धारा चारों ओर पत्थरों के कारण उछलती हुई घोर शब्द करती है। यहां हरसिल में ही पूर्व काल में जन्हु ऋषि का आश्रम इसने बहा डाला था उसी से इसका नाम जाह्नवी पड़ गया ।

उच्चा भग्ना दलितदलिता मार्गभूर्वर्ततेऽत्र
शुभ्राकारैः स्फटिकनिवहैर्निर्झरैः पूरिता च
यस्याः दृश्यं विशदनयनैः पीयमानाश्च पान्थाः
मोदाब्धौ स्वे गलितहृदयाः सन्निमग्ना भवन्ति ॥ ५२ ॥

अन्वय– अत्र उच्चा भग्ना दलित दलिता मार्गभूः वर्तते (या) शुभ्राकारैः स्फटिकनिवहैः निर्झरैः पूरिता च (अस्ति) यस्याः दृश्यं विशद नयनैः पीयमानाः च पान्थाः स्वे मोदाब्धौ गलितहृदयाः सन्निमग्नाः भवन्ति ।

अनुवाद– यहां पर ऊंची एवं टूटी फूटी यत्र तत्र भग्न संकरी मार्ग भूमि पग डण्डी है जिसमें बीच-बीच में स्वच्छ आकार वाले स्फटिक जैसे झरनों की बहुतायत है । जिसके दृश्य को आंखें बड़ी-बड़ी करके पीते हुए पथिक अपने को आनन्द सिन्धु में डूबा हुआ पाते हैं ।

अग्रे गत्वातिसघनतरं वर्तते काननं त-
द्यस्मिंल्लीना सुभटबहुला सास्मदीया च लंका
रक्षाकारैर्विविधविधिभिर्गोप्यमाना समन्ता-
दास्ते दिव्या परमरमणी दर्शकाणां समेषाम् ॥ ५३ ॥

अन्वय– अग्रे गत्वा अतिसघनतरं तत् काननं वर्तते यस्मिन् लीना सुभटबहुला अस्मदीया च 'सा' लंका (वर्तते या) रक्षा कारैः विविधविधिभिः गोप्यमाना समन्तात् समेषां दर्शकाणां (कृते) परमरमणी दिव्या अस्ति ।

अनुवाद आगे चलने पर अत्यन्त घना वह जंगल है जहां हमारे वीर सैनिकों से घिरी लंका नामक नगरी है जिसकी रक्षा वीर रक्षकों के द्वारा विविध प्रकार से की जाती है (सीमा प्रान्त होने से) वह लंका नामक स्थान सभी दर्शकों के लिए परम रमणीय है ।

रम्यो मार्गः सुभटरचितो वर्ततेऽतोग्रतो हि,
घोराकारां सघनविटपाच्छादितां भैरवाख्याम्
घाटीं गत्वा सभयनयनैः कम्पते पान्थकोऽपि
अग्रे यातो भवति न हि कः कम्पितो ज्येष्ठकानाम् ॥ ५४ ॥

अन्वय– अतः अग्रतः हि सुभटरचितः रम्यमार्गः वर्तते (तेन) सघनविटपाच्छादितां घोराकारां भैरवाख्यां घाटीं गत्वा सभयनयनैः पान्थकः अपि कम्पते। जेष्ठकानां अग्रे यातः कः कम्पितः न हि भवति।

अनुवाद– इससे आगे सैनिकों द्वारा बनाया गया सुन्दर मार्ग है उस पर चलते हुए घने विटपों से आच्छादित भय लगने वाली भैरों घाटी जाकर पथिक भयभीत नयनों से देखता है और कम्पित हो जाता है। अपने से बड़ों को देखकर कौन भय से नहीं कांपता

सायंकाले तु दिवसपतौ रक्तबिम्बेऽथ भानौ
रक्तीभूते हिमगिरिमुखे रंजिताशवाधूट्याः
भक्त्यारक्तस्त्वमपि सुकवे लप्स्यसे देवभूमिं
गंगोत्तर्याः सकलशिवदां पुण्य भावैरुपेताम् ॥ ५५ ॥

अन्वय– सुकवे ! सायंकाले रक्तबिम्बे दिवसपतौ भानौ हिमगिरिमुखे रक्ती भूते रंजिताशावधूट्याः भक्त्यारक्तः त्वं अपि गंगोत्तर्याः सकलशिवदां पुण्यभावैः उपेतां देवभूमिं लप्स्यसे।

अनुवाद– हे सुकवि ! सायंकाल के समय दिनपति सूर्य के मुख के रक्त वर्ण होने पर हिमालय का बर्फीला मुख भी रक्त होने पर दिशा रूपी नायिका के भी रक्त वर्णी होने पर भक्ति से आरक्त तुम भी गंगोत्तरी की समस्त कल्याणदात्री पुण्य भावों से भरी देव भूमि को प्राप्त करोंगे।

ब्रह्मानन्दाकुलितविभवा वेदघोषैरुपेता
रम्योत्सङ्गे हिमगिरिगृहे वर्तते खण्डभूता
पुञ्जीभूता मुनिकुलयुता ब्रह्मलोकस्य पुण्या
गंगोत्तर्या मधुररचना भूतले काप्यपूर्वा ॥ ५६ ॥

अन्वय- ब्रह्मानन्दाकुलितविभवा वेदघोषैः उपेता हिमगिरिगृहे रम्योत्सङ्गे पुञ्जीभूता मुनिकुलयुता ब्रह्मलोकस्य खण्डभूता गंगोत्तर्याः मधुर-रचना भूतले का अपि अपूर्वा वर्तते ।

अनुवाद- ब्रह्मानन्द से पूर्ण, वैभव से भरी, वेदघोष से समन्वित, हिमालय के घर में रमणीय गोद में इकट्ठी हुई, मुनियों से सेविता, ब्रह्मलोक के साक्षात् एक खण्ड की भांति लगने वाली गंगोत्तरी की रचना पृथ्वी पर किसी अपूर्व शोभा को धारण करती है ।

प्रासादे सा वसति सरसा हेममूर्त्तौ च गङ्गा
कालिन्द्यादिस्वजनसहिता नारदाद्यैर्युता च
घंटानादैः जय-जयरवैः पूरयन्तो दिगन्तान्
भक्ताः सर्वे सुरपुरधुनीं पूजयन्तीह नित्यम् ॥ ५७ ॥

अन्वय– सा गङ्गा प्रासादे सरसा हेममूर्तौ कालिन्द्यादिस्वजनसहिता नारदाद्यैः युता च वसति । सर्वे भक्ताः घंटानादैः जय-जयरवैः दिगन्तान् पूरयन्तः इह सुरपुरधुनीं नित्यं पूजयन्ति ।

अनुवाद– वह गंगा अपने विशाल मन्दिर में सुन्दर स्वर्ण प्रतिमा के रूप में कालिन्दी इत्यादि स्वजनों के साथ नारदादि भक्तों के साथ विराजती है । (अर्थात् मन्दिर में कालिन्दी नारदादि की स्वर्ण-मयी प्रतिमायें हैं) यहां समस्त भक्तगण घंटा वजाते हुए जय जय कार करते हुए गंगा की नित्य ही पूजा करते हैं ।

सायंकाले त्वमपि सुकवे मातृनीराजनायां
गत्वा स्तोत्रं सरसवचनैः प्रेमतो गाय बन्धो
गीतं यच्चाप्रतिमविबुधैः श्रीजगन्नाथविप्रैः
गङ्गादेव्या महिमभरितं स्तोत्रकं तत्प्रशस्यम् ॥ ५८ ॥

अन्वय- सुकवे ! सायंकाले मातृनीराजनायां गत्वा त्वं अपि सरसवचनैः प्रेमतः स्तोत्रं गाय । बन्धो ! यत् (स्तोत्रं) अप्रतिमविबुधैः श्री जगन्नाथ विप्रैः गङ्गादेव्याः महिमभरितं प्रशस्यं गीतं तत् । (गाय)

अनुवाद- हे सुकवि ! सायं कालीन गंगा मां की नीराजना आरती में जाकर तुम भी सरसवाणी से प्रेम पूर्वक स्तोत्र गाना । बन्धु ! जो स्तोत्र परम पण्डित जगन्नाथ कवि के द्वारा (गंगा लहरी) गंगा की महिमा में रचा गया है उस प्रशस्त गीत को गाना ।

पुण्यां दृष्ट्वा परमसुभगां तां शिलाञ्चापि बन्धो,
यत्र स्थित्वा सगरकुलजः साधयामास गङ्गाम्
यस्य प्रेम्णाऽमृतसुरधुनी ब्रह्मलोकं विहाया-
याता भूम्यां सकलफलदा पूजय त्वं सुभक्त्या ॥ ५९ ॥

अन्वय- बन्धो ! परमसुभगां पुण्यां तां शिलां च अपि दृष्ट्वा, यत्र स्थित्वा सगरकुलजः गङ्गां साधयामास, यस्य प्रेम्णा अमृतसुरधुनी सकल फलदा ब्रह्मलोकं विहाय भूम्यां आयाता त्वं सुभक्त्या पूजय ।

अनुवाद- हे बन्धु ! परम सुन्दर पवित्र उस शिला को देखकर, जिस पर बैठकर भगीरथ ने गङ्गा को आराधित किया था और जिसके प्रेम से देवलोक की नदी गंगा ब्रह्मलोक छोड़ कर भूमि पर आई जो सकल फल दात्री है, तुम उसे भक्ति पूर्वक पूजना ।

शुभ्रं स्वच्छं नयनसुभगं मन्दिरं जह्नुजायाः
लोके सृष्टं विमलमतिभिः शंकराचार्यपादैः
नत्वा तेषां रजतरचितां मूर्तिकां गर्भगेहे
श्रद्धाभारात्पुलकिततनुर्नूनमेवात्र भूयाः ॥ ६० ॥

अन्वय– शुभ्रं स्वच्छं नयनसुभगं जह्नुजायाः मन्दिरं विमलमतिभिः शङ्कराचार्यपादैः लोके सृष्टं तेषां रजतरचितां मूर्तिकां गर्भगेहे नत्वा अत्र श्रद्धा भारात् नूनं एव पुलकिततनुः भूयाः (त्वमिति)

अनुवाव– शुभ्र श्वेत एवं स्वच्छ नयन रमणीय भागीरथी का मन्दिर विमल बुद्धि वाले आदि शङ्कराचार्य जी ने बनवाया था। गर्भगृह में उनकी चांदी की प्रतिमा को प्रणाम करके आप श्रद्धा के भार से निश्चय ही पुलकित शरीर वाले हो जायेंगे।

रात्रौ नूनं कलकलरवैर्लालितस्त्वं शयीथाः
गंगातीरे मुनिजनकृते त्वाश्रमे नन्दितात्मा
प्रातःकाले पुनरपि नदीतीरदेशं व्रज त्वं
स्नातुं शीते सुखदशुभदे स्वर्धुनीवारिपूरे ॥ ६१ ॥

अन्वय-- त्वं नन्दितात्मा कलकलरवैः लालितः च गंगातीरे मुनिजनकृते आश्रमे नूनं शयीथाः। प्रातःकाले सुखदशुभदे शीते स्वर्धुनीवारिपूरे स्नातुं पुनः अपि नदीतीरदेशं व्रज।

अनुवाद-- तुम प्रसन्नात्मा से कलकल शब्द द्वारा लालित होकर गंगा तट पर ऋषियों द्वारा निर्मित आश्रम में सो जाना। प्रातः काल में शुभदात्री सुखदात्री गंगा के शीतल जल में स्नान हेतु पुनः नदी तट पर जाना।

तत्र स्नात्वा पुनरपि कवे दर्शनं त्वं विधेहि
गंगामातू रमणनिलये भक्तिभावेन नत्वा
भूयो भूयो निजजनकृते तत्कृपायाचकः स
न्निच्छारामं चपलचरितं मातुरग्रे वदस्व ॥ ६२ ॥

अन्वय-- कवे ! तत्र स्नात्वा त्वं पुनः अपि गंगामातुः रमणनिलये भवित-भावेन नत्वा दर्शनं विधेहि। निजजनकृते भूयःभूयः तत्कृपायाचकः सन् चपलचरितं इच्छारामं मातुः अग्रे वदस्व।

अनुवाद- हेकवि ! वहां स्नान करके तुम पुनः गंगा माता के रमणीय सदन में भक्ति भाव से नमन करके दर्शन करना। अपने समस्त स्वजनों के लिए बार-बार उनकी कृपा की याचना करके चञ्चल चरित वाले इच्छाराम के विषय में भी गंगा मां के सम्मुख कुछ कहना।

इच्छारामः प्रणमति शुभे पादपद्मे त्वदीये
गेहे स्वीये कुशलसहितस्त्वत्कृपायाः प्रभावात्
तेनोक्तं यत्परिकरयुतेनात्र मातस्तवाग्रे
तेनाहं ते चरणशरणे प्रेषितो मित्रदूतः ॥ ६३ ॥

अन्वय- शुभे !त्वत्कृपायाः प्रभावात् स्वीये गेहे कुशलसहितः इच्छारामः त्वदीये पादपद्मे प्रणमति। मातः परिकरयुतेन तेन तव अग्रे यत् उक्तं तेन ते चरणशरणे मित्रदूतः अहं प्रेषितः।

अनुवाद- हे शुभदे ! तुम्हारी कृपा के प्रभाव से अपने घर में सकुशल इच्छाराम तुम्हारे पादपद्मों में प्रणाम करता है। हे मां ! परिवार सहित आये हुए उसने जो कुछ तुम्हारे सामने कहा था उसी के अनुसार तुम्हारी चरण शरण में मुझे मित्रदूत बनाकर भेजा गया है।

नत्वा देवीं प्रचल झटिति त्वं कवे शैवधाम्नि
अग्रे बन्धो कुरु गमनकं पुण्यकेदारखण्डे
यत्रास्ते भोः परमशिवदो भूतभव्यान्तरात्मा
भूतेशोऽसावजहरिनुतश्चन्द्रमौलिः शिवो नः ॥ ६४ ॥

अन्वय-- कवे ! देवीं नत्वा झटिति प्रचल । वन्धो ! शैवधाम्नि पुण्यकेदार खण्डे अग्रे गमनकं कुरु, भो. यत्र परमशिवदः भूतभव्यान्तरात्मा अज हरिनुतः चन्द्रमौलिः असौ नः शिवः भूतेशः आस्ते ।

अनुवाद-- हे कवि ! देवी गंगा को प्रणाम कर तुम शीघ्र ही चल पड़ो। बन्धु ! भगवान् शिव के पवित्र केदार खण्ड के लिए आगे की यात्रा करो यत्र परम कल्याणप्रद प्राणि मात्र के आत्म स्वरूप ब्रह्मा विष्णु आदि से नमस्कृत चन्द्र मौलि वे हमारे भगवान् शिव विराजते हैं ।

पूर्वं तावद्द्रुततरगतौ काशिकामुत्तरीयां
यावद् गत्वा तदनु सुकवे लंघयित्वा च गंगाम्
वामात्तीराच्चलतु टिहरीं श्रीं विशालां विशालां
नद्या बन्धः प्रचलति यतो नित्यलोकैर्निरुद्धः ॥ ६५ ॥

अन्वय– सुकवे ! पूर्वं तावत् द्रुततरगतौ उत्तरीयां काशिकां यावत् गत्वा तदनु गंगां च लंघयित्वा वामात् तीरात् श्री विशालां-विशालां टिहरीं यावत् चलतु यत्र नित्यलोकैः निरुद्धः (सन्नपि) नद्याः वन्धः प्रचलति ।

अनुवाद– हे सुकवि ! पहले तो तींव्रगति से उत्तर काशी तक चलो वहां से गंगा को पार कर उसके बांये तट से लक्ष्मी से स्फीत टिहरी नामक स्थान तक चलो जहां जनता के द्वारा नित्य मना करने के बावजूद नदी पर बांध बनाया जारहा है ।

शान्तो मार्गो लसति सुकवे टेहरीतस्तवाग्रे
सायं यावत् प्रचुरगमनं मित्र नूनं भवेत्ते
दृष्ट्वाः पूरं विशदजलकं श्रीपुरे रम्यदेशे
हृष्टात्मा त्वं महदलकनन्दातटे याहि विप्र ।। ६६ ।।

अन्वय– सुकवे ! तव अग्रे टेहरीतः शान्तः मार्गः लसति मित्र ! सायं यावत् ते प्रचुरगमनं भवेत् । विप्र ! श्रीपुरे रम्यदेशे विशदजलकं पूरं दृष्ट्वा त्वं हृष्टात्मा (सन्) महद् अलकनन्दा तटे याहि ।

अनुवाद-- हे सुकवि ! तुम्हारे आगे टेहरी तक शान्त मार्ग है । मित्र सायं-काल तक तुम्हारी लम्बी यात्रा होगी विप्रवर! सायं समय श्रीनगर नामक रमणीय स्थान पर जल से पूर्ण अलकनन्दा नदी के विशाल तट पर प्रसन्न होकर पहुँचना ।

दृष्ट्वात्र श्रीनगरमतुलं संकुलं तीर्थकृद्भि–
रुच्चैः सौधैः प्रचुरपणकैः स्मारयद्यद्धि दिल्लीम्
रात्र्यावासं कथमपि कवे लप्स्यसे त्वं महार्घ्यं
प्रातःकाले व्रज पुनरथो रुद्रनाम्नि प्रयागे ।। ६७ ।।

अन्वय– अत्र तीर्थकृद्भिः संकुलं अतुलं श्रीनगरं दृष्ट्वा यत् हि उच्चैः सौधैः प्रचुर पणकैः दिल्लीं स्मारयत्, कवे ! त्वं कथं अपि महार्घ्यं रात्र्यावासं लप्स्यसे । अथ प्रातः काले पुनः अपि रुद्रनाम्नि प्रयागे व्रज ।

अनुवाद– यहां तीर्थ यात्रियों से भरा अतुल वैभव से पूर्ण श्रीनगर है जो ऊंचे भवनों एवं प्रचुर दूकानों से दिल्ली का स्मरण कराता है। हे कवि ! यहां तुम्हें किसी प्रकार कठिनाई से ही महंगा आवास मिलेगा इसके बाद प्रातःकाल पुनः रुद्र प्रयाग की ओर चलो ।

मन्दाकिन्या विमलनिवहा वारिधारा पवित्रा
नन्दानीरैर्मिलति मुदितेहैव रुद्रप्रयागे
शुभ्रश्यामे सलिलमिलने नित्यमेवात्रदेशे
प्रातःसायं मिलनसुषमां को न साक्षात्करोति ॥ ६८ ॥

अन्वय– इह रुद्र प्रयागे एव मुदिता पवित्रा मन्दाकिन्याः विमलनिवहा वारिधारा नन्दानीरैः (साकं) मिलति। अत्र देशे नित्यं एव शुभ्रश्यामे सलिलमिलने प्रातः सायं मिलनसुषमां कः साक्षात् न करोति।

अनुवाद– यहां रुद्र प्रयाग में ही पवित्र मन्दाकिनी नदी की अत्यन्त विमल जलधारा अलकनन्दा नदी के जल से मिलती है। यहां मन्दाकिनी के श्वेत तथा अलकनन्दा के किंचित् श्याम जल के मिलने से नित्य ही प्रातःकाल एव सायंकाल के मिलन के समान दृश्य का कौन साक्षात्कार नहीं करता अर्थात सभी करते हैं।

नन्दां तीर्त्वा हरितहरिते तीरदेशे सुरम्ये
मन्दाकिन्याः कलकलयुते के शिवे मज्जनञ्च
कृत्वा नूनं निजतनुगतं मार्गखेदं विहाय
केदाराख्यं त्रिभुवनगुरोर्धाम यायाः पवित्रम् ॥ ६९ ॥

अन्वय– नन्दां तीर्त्वा हरित-हरिते सुरम्ये तीर देशे कलकलयुते मन्दाकिन्याः शिवे के मज्जनं च कृत्वा निजतनुगतं मार्गखेदं च नूनं विहाय त्रिभुवन गुरोः पवित्रं धाम केदाराख्यं यायाः।

अनुवाद– अलकनन्दा को पारकर हरे भरे रमणीय तट पर कलकल बहती मन्दाकिनी के पवित्र जल में स्नान करके शरीर गत मार्ग जन्य थकान को निश्चय ही दूर करके त्रिभुवन के गुरु भगवान शंकर के पवित्र केदार नाथ धाम को जाना।

तिल्वाराख्यं लघुनगरकं वर्तते यत्तवाग्रे
जानेऽहं नो खलु तिलकुलं चास्ति नास्तीतिबन्धो
गौरे गण्डे ललितललिते पर्वतस्त्रीकुलेषु
पिप्लुं दृष्ट्वा मनसि विहितं यत्तिलान्यत्र सन्ति ॥ ७० ॥

अन्वय- बन्धो ! यत् तव अग्रे तिल्वाराख्यं लघुनगरकं वर्तते अहं खलु नो जाने यत (अत्र) तिलकुलं अस्ति नास्ति इति (परं) पर्वतस्त्रीकुलेषु ललितललिते गौरे गण्डे पिप्लुं दृष्ट्वा मनसि विहितं यत् तिलानि अत्र सन्ति ।

अनुवाद- बन्धु ! जो तुम्हारे आगे तिलवाड़ा नामक छोटा सा नगर पड़ेगा मैं नहीं जानता कि तिल वहां होते है या नहीं किन्तु पर्वतीय स्त्रियों के सुन्दर कपोलों पर तिल देखकर मेरे मन में यह बात आई कि तिल यहाँ हैं ।

अग्रे किञ्चिद् व्रज कुलपतेस्तामगस्त्यस्य भूमिं
यस्यां स्थित्वा परमकठिनं तेन तप्तं तपस्तत्
गुप्ताकाशी शिवगिरिजयोः संयुता वर्ततेऽग्रे
तस्यां गत्वा नमनविधिना श्रीशिवं पूजयात्र ॥ ७१ ॥

अन्वय- किञ्चिद् अग्र कुलपतेः अगस्त्यस्य तां भूमिं व्रज यस्यां स्थित्वा तेन तत् परमकठिनं तपः तप्तम् अग्रे शिवगिरिजयोः संयुता गुप्ताकाशी वर्तते । तस्यां गत्वा नमन विधिना श्री शिवं अत्र पूजय ।

अनुवाद- कुछ आगे चलकर कुलपति अगस्त्य की उस भूमि पर पहुँचोगे जहां उन्होने बैठकर परम तप किया । आगे शिव पार्वती से युक्त गुप्त काशी है । वहां जाकर नमस्कार करके शिवजी को पूजना ।

स्थानादस्माद्विटपबहुलाद् वीक्ष्य नूनं हिमाद्रेः
हैमाच्छन्नान् शिखरिशिखरान् संवृतान्वै वनौघैः ।
अत्युत्कण्ठाः पथिकचरणास्तीव्रगत्या प्रयातुं
केदारस्याप्रतिमभुवने दर्शनार्थं व्रजन्ति ॥ ७२ ॥

अन्वय- अस्मात् विटपबहुलात् स्थानात् हिमाद्रेः हैमाच्छन्नान् शिखरि शिखरान् वनौघैः संवृतान् वै वीक्ष्य अत्युत्कण्ठाः पथिकचरणाः तीव्रगत्या प्रयातुं केदारस्य अप्रतिमभुवने दर्शनार्थं व्रजन्ति ॥

अनुवाद- यह स्थान वृक्षों से घिरा हुआ है। यहां से हिमालय के हिम-मण्डित शिखरों को वनसमूह से घिरा देखकर अति उत्कण्ठा से पथिकों के पांव तीव्रगति से केदारनाथ के अप्रतिमलोक के दर्शन हेतु उठने लगते हैं।

द्वित्रिक्रोशं परिमितपथं वीक्ष्य सोनप्रयागं
मन्दाकिन्यास्तटपरिगतं शोभनं ग्रामकं त्वम्
उल्लङ्घ्यामुं सपदि च कवे शैलजायाः प्रयाहि
गौरीकुण्डे सघनविटपाच्छादिते तप्तकुण्डे ॥ ७३ ॥

अन्वय- कवे ! त्वं मन्दाकिन्याः तटपरिगतं शोभनं ग्रामकं द्वित्रिक्रोशं परिमितपथं सोनप्रयागं वीक्ष्य सपदि च अमुं उल्लङ्घ्य शैल जायाः सघनविटपाच्छादिते तप्तकुण्डे गौरीकुण्डे प्रयाहि ।

अनुवाद- हे कवि ! तुम मन्दाकिनी के तट पर स्थित एक सुन्दर गांव सोन प्रयाग दो तीन कोस चलकर देखोगे। शीघ्र ही उसे पार कर पार्वतीजी के, घने वृक्षों की छाया से परिगत तप्त कुण्ड वाले गौरी कुण्ड स्थान को चलो।

यानात्स्वीयादवतर कवे दण्डपाणिः पुनः स्याः
पादातिः सन् व्रज सहचरीसंगतस्त्वग्रतो हि
वक्रे मार्गे शकलरचिते यष्टिकां वै गृहीत्वा
मन्दं मन्दं समुपसर तच्छैवशैले पवित्रे ॥ ७४ ॥

अन्वय- कवे ! स्वीयात् यानात् अवतर । पुनः दण्डपाणिः स्याः पादातिः सन् तु सहचरीसंगतः अग्रतः हि व्रज । शकलरचिते वक्रे मार्गे यष्टिकां गृहीत्वा तत् वै पवित्रे शैवशैले मन्दं मन्दं समुपसर ।

अनुवाद- यहां गौरी कुण्ड पर अपने यान से उतर कर पुनः दण्डपाणि हो जाओ । पैदल ही धर्मपत्नी के साथ आगे चलो । पत्थरों से बने टेढ़े मार्ग पर लाठी लेकर उस पवित्र शैव शैल केदार की ओर धीरे-धीरे चलो ।

झिल्लीशब्दः, खगकुलरवः, स्रोतसाञ्चापि घोषो
वायोर्वेगो हिमगिरिगतः सर्व एवात्र बन्धो ।
हृत्तंत्रीं ते बलवदधुना झंकृतां कारयित्वा
शंभोर्गीतं पठनमुखरं त्वां करिष्यन्ति नूनम् ॥ ७५ ॥

अन्वय-- बन्धो ! झिल्लीशब्दः खगकुलरवः स्रोतसां च अपि घोषः वायोः वेगः हिमगिरिगतः सर्व एव अत्र ते हृत्तंत्रीं अधुना बलवत् झंकृतां कारयित्वा शम्भोः गीतं पठनमधुरं त्वां नूनं करिष्यन्ति ।

अनुवाद- हे बन्धु ! झिल्ली की झंकार, पक्षियों का कूजन, झरनों का घोष, वायु का वेग, हिमालय के पास सब कुछ ऐसा है जो तुम्हारी हृत्तंत्रीं को इस समय बलात् झंकृत करके शिव की स्तुति गाने को बाध्य कर देगा ।

अर्द्धे मार्गे विरम पलकै रामबाडाभिधाने
ग्रामे नैजं जठरभरणं संविधेहि त्वमत्र ।
अग्रे यात्रा कठिनकठिना ते भवित्री सुरम्या
यस्या अन्ते शिवपरिकरं लप्स्यसे हैमखण्डे ॥ ७६ ॥

अन्वय– त्वं रामबाडाभिधाने अर्द्धे मार्गे पलकैः विरम ग्रामे नैजं जठर भरणं अत्र संविधेहि। अग्रे कठिनकठिना सुरम्या यात्रा भवित्री यस्याः अन्ते हैमखण्डे शिवपरिकरं लप्स्यसे।

अनुवाद-- तुम रामबाड़ा नामक स्थान पर बीच मार्ग में कुछ पलों के लिए विराम करना इस ग्राम में भोजनादि भी कर लेना। आगे कठिन किन्तु रमणीय यात्रा होगी जिसके अन्त में बर्फ के पहाड़ पर शिवपरिवार के दर्शन होंगे।

अत्युत्तुंगा हिमगिरिशिला हैमवस्त्रं दधानाः
स्रोतोव्याजैः प्रकृतिरमणी चीरकं दर्शयन्ती ।
स्वीयारामे गिरिपतिसुता निश्छलं क्रीडमाना
केदारेऽस्मिञ्जलधरगणैर्नन्दिता नित्यमास्ते ॥ ७७ ॥

अन्वय– हैमवस्त्रं दधानाः अत्युत्तुंगा हिमगिरिशिलाः, स्रोतोव्याजैः चीरकं दर्शयन्ती प्रकृतिरमणी स्वीयारामे निश्छलं क्रीडमाना गिरिपति सुता अस्मिन् केदारे जलधरगणैः नन्दिता नित्यं आस्ते।

अनुवाद- बर्फ के वस्त्र पहिने अत्यन्त ऊंचे हिमालय के शिखर, झरनों के बहाने अपना दुपट्टा लहराती प्रकृति रूपी सुन्दरी, अपने आंगन में निश्छल होकर खेलती नगपति सुता पार्वती इस केदार खण्ड में मेघों के साथ सदा आनन्दित होकर बसतीं हैं।

मध्ये मध्ये विपुलशिखरान्हैमवस्त्रावृतांस्त्वं
उल्लङ्घ्यात्र प्रचल तरसा दिव्यकेदारखण्डे
यात्रान्तेऽसौ नगपतिगृहे श्वेतहेमाद्रिभूमौ
केदारः स्यान्नयनपथगस्तावकैः पूर्वपुण्यैः ॥ ७८ ॥

अन्वय– त्वं मध्ये मध्ये हैमवस्त्रावृतान् विपुलशिखरान् अत्र उल्लङ्घ्य तरसा दिव्यकेदारखण्डे प्रचल यात्रान्ते नगपतिगृहे श्वेत हेमाद्रिभूमौ असौ केदारः तावकैः पूर्वपुण्यैः नयनपथगः स्यात् ।

अनुवाद- तुम बीच बीच में हिम वस्त्रों से ढके विपुलकाय शिखरों को लांघकर तेजी से दिव्य केदार नाथ की ओर चलो। यात्रा के अन्त में हिमालय के घर में सफेद हिमालय की भूमि पर यह केदार नाथ तुम्हारे पूर्व जन्म कृत पुण्यों के प्रभाव से नयनगोचर होगा

हैमाच्छैलात्पतति गहने वारिधारातिशीता
मन्दाकिन्या न च जलचये कोऽपि शक्तोऽवगाहे ।
आचम्य त्वं सुविशदतमे प्राङ्गणे मन्दिरस्य
केदारेशं जनिभयहरं दर्शनार्थं प्रयाहि ॥ ७९ ॥

अन्वय- हैमात् शैलात् अतिशीता वारिधारा गहने पतति मन्दाकिन्याः जलचये कः अपि अवगाहे शक्तः न (अतएव) त्वं आचम्य मन्दिरस्य सुविशदतमे प्राङ्गणे जनिभयहरं केदारेशं दर्शनार्थं प्रयाहि ।

अनुवाद– वर्फ के पहाड से अतिशीतल जल की धारा नीचे गिरती है अतः मन्दाकिनी के जल में कोई भी स्नान में समर्थ नहीं होता । अतः तुम आचमन करके मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में जन्ममृत्युभयहारी केदारेश्वर शिव के दर्शन हेतु जाना।

प्रासादस्तु त्रिभुवनगुरोरस्ति दिव्यातिदिव्यो
यस्मिन्सर्वे भरतकुलजाः पाण्डवाः मूर्तिमन्तः
कृष्णो भीमोऽर्जुनकयमलौ धर्मराजोऽथ कुन्ती
द्रौपद्याद्याः निजनिजगृहे वन्दनीयाः लसन्ति ॥ ८० ॥

अन्वय- त्रिभुवनगुरोः प्रासादः तु दिव्यातिदिव्यः अस्ति यस्मिन् सर्वे भरतकुलजाः पाण्डवाः मूर्त्तिमन्तः (सन्तः) कृष्णः भीमः अर्जुनकयमलौ धर्मराजः अथ कुन्ती द्रौपद्याद्याः निजनिजगृहे वन्दनीयाः लसन्ति ।

अनुवाद- त्रिलोकी के गुरु का वह भव्य मन्दिर दिव्यातिदिव्य है। जिसमें सभी भरतवंशी पाण्डव मूर्तियों में विराजते हैं। कृष्ण भीम अर्जुन नकुल सहदेव युधिष्ठिर कुन्ती द्रौपदी आदि अपने-अपने स्थान पर वन्दनीय होते हुये सुशोभित होते हैं।

गर्भे गेहे विनतशिरसा याहि हे शुक्लकीर्ते
केदारशो भुवनपशुपः स्थाणुमूर्तौ विहारते
तच्छृंगारं नयनसुखदं वीक्ष्य तेऽप्यन्तरात्मा
ब्रह्मानन्दे शिवमहिमनि क्षिप्रमेवाव्रजेद्धि ॥ ८१ ॥

अन्वय- हे शुक्लकीर्ते ! गर्भे गेहे विनतशिरसा याहि इह भुवनपशुपः केदारेशः स्थाणुमूर्तौ आस्ते । नयनसुखदं तत् श्रृंगारं वीक्ष्य ते अन्तरात्मा अपि ब्रह्मानन्दे शिवमहिमनि क्षिप्रं एव आव्रजेत् हि ।

अनुवाद-- हे श्वेत कीर्ति वाले ! गर्भ गृह में विनतशिर जाना । यहां जगत्पशुपति केदारेश्वर स्थाणुमूर्ति में विराजते हैं। नेत्ररमणीय उनका श्रृंगार देखकर तुम्हारी अन्तरात्मा ब्रह्मानन्द में तथा शिव महिमा में लीन हो जायेगी।

घण्टाघोषैर्मुखरितदिशां रात्रिनीराजनां तां
हस्तैर्नीत्वा जननसुफलं लप्स्यसे मानवीयम्
रात्रौ विप्रे सुखदशयने चन्द्रिकापूरितायां
तुंगं शैलं हिमवसनकैश्छन्नगात्रं प्रपश्य ॥ ८२ ॥

अन्वय-- घण्टाघोषैः मुखरितदिशां तां रात्रिनीराजनां हस्तैः नीत्वा मानवीयं जननसुफलं लप्स्यसे । चन्द्रिकापूरितायां रात्रौ विप्रे सुखदशयने हिमवसनकैः छन्नगात्रं तुंगं शैलं प्रपश्य ।

अनुवाद- घण्टा घोष से मुखरित दिशाओं वाली उस सायं कालीन आरती को हस्त द्वारा लेकर मानवजीवन का सुफल पाओगे। चांदनी से भरी रात में किसी तीर्थ के ब्राह्मण के सुखद शयनागार में बैठकर बर्फ के कपड़े पहनने वाले ऊंचे हिमालय को निहारो ।

कैलासोऽयं स्फुरति नयने वापि हासः शिवस्य
शुक्लो वर्णो धवलहिमतः केन वा सम्प्रसूतः
शुक्लः शैलः सिततमशिवः शुक्लगोत्राभिधस्त्वं
सर्वं शुक्लं सरस ! भविता तत्क्षणे कल्पयेऽहम् ॥८३ ॥

अन्वय-- सरस ! अयं नयने कैलासः अपि वा शिवस्य हासः स्फुरति धवलहिमतः शुक्लः वर्णः केन वा सम्प्रसूतः । शुक्लः शैलः सिततमशिवः शुक्लगोत्राभिधः त्वं तत् क्षणे सर्वं शुक्लं भविता (इति) अहं कल्पये ।

अनुवाव– हे सरस ! यह कैलास पर्वत स्फुरित होता है या शिव का अट्टहास है ? बर्फ जैसा श्वेतरंग किसने इसे रचा है ? (जब तुम वहां होओगे) उस क्षण शुक्ल पर्वत, शुक्ल शिव एवं शुक्लवंशोत्पन्न तुम सब कुछ शुक्ल ही शुक्ल हो जायेगा ऐसी मैं कल्पना करता हूँ ।

रात्रिं नीत्वा धवलवसने तूलराशौ सुखेन
प्रातः स्नानं रचय लघुना चोष्णकेनैव केन
केदारेशं निगमविधिना चार्चय त्वं कवीश !
येनानन्दं निखिलकरणैर्लप्स्यसे नूनमेव ॥ ८४ ॥

अन्वय– धवलवसने तूलराशौ सुखेन रात्रिं नीत्वा प्रातः स्नानं लघुना उष्णकेन एव केन रचय। कवीश ! त्वं निगमविधिना केदारेशं च अर्चय । येन निखिलकरणैः नूनं एव आनन्दं लप्स्यसे।

अनुवाद– शुभ्रचादर वाले बिस्तर पर रजाई में रात बिताकर प्रातः काल थोड़ा सा स्नान गर्म जल से ही करना। हे कवीश ! तुम वैदिक विधि से केदारेश्वर की अर्चना करो जिससे तुम्हारी समस्त इन्द्रियों को आह्लाद प्राप्त होगा।

केदारेशं विधिवदधुना पूजयित्वाशु गच्छेः
अस्तं यातो निगमहितकृच्छंकराचार्यकोऽत्र
तन्निर्वाणेऽभवदतिजडा तत्समाधौ च गत्वा
श्रद्धापूर्णं रचय विधिना पुष्पदानं कवीश ! ॥ ८५ ॥

अन्वय– कवीश ! अधुना विधिवत् केदारेशं पूजयित्वा आशु गच्छेः। अत्र निगमहितकृत् शङ्कराचार्यकः अस्तं यातः । तत् निर्वाणे (या) अतिजडा अभवत् तत् समाधौ च गत्वा श्रद्धापूर्णं पुष्पदानं विधिना रचय।

अनुवाद– हे कवीश ! इस समय विधि पूर्वक केदारेश्वर की पूजा करके शीघ्र चलो। यहीं पर वेदों का हित सम्पादन करने वाले आदि शंकराचार्य का महाप्रयाण हुआ था उनके उस निर्वाण को देखकर ही मानों जो अत्यन्त जड़ हो गई थी ऐसी उनकी समाधि पर जाकर श्रद्धा से पुष्पांजलि समर्पित करना।

क्षिप्रं नीचैस्त्रिभुवनगुरोर्धामतो मोदमग्नः
पद्भ्यामेवावतर सुकवे मन्दहासं वितन्वन्
मार्गे पान्थानुपशमय तान् ये व्रजन्त्यूर्ध्वमार्गे
तेषां यात्रा सुगमविधिना येन पूर्णा भवित्री ॥ ८६ ॥

अन्वय- सुकवे ! मन्द हासं वितन्वन् त्रिभुवन गुरोः धामतः मोदमग्नः (त्वं) पद्भ्यां एव क्षिप्रं नीचै अवतर ! मार्गे ये पान्थाः ऊर्ध्वमार्गे व्रजन्ति तान् उपशमय येन तेषां यात्रा सुगमविधिना पूर्णा भवित्री।

अनुवाद- हे सुकवि ! मन्द मन्द मुस्कान बिखेरते हुए त्रिभुवन के गुरु केदारेश्वर के धाम से आनन्द मग्न आप पैदल ही नीचे शीघ्र उतरिए। रास्ते में जो पथिक ऊपर की ओर जा रहे हों उनका साहस बढ़ाइए इससे उनकी यात्रा सुगम होगी और पूर्ण होगी।

गौरीकुण्डे स्नपनविधिना तप्तपूरे स्वकीयं
मार्गक्लेशं झटिति सुकवे मोक्ष्यसे नूनमेव
सायंकाले पुनरपि सखे रुद्रनाम्नि प्रयागे
वासार्थं त्वं व्रज सहचरी सार्द्धमेवात्र बन्धो ॥८७।

अन्वय- बन्धो ! गौरी कुण्डे तप्तपूरे स्नपनविधिना स्वकीयं मार्गक्लेशं नूनं एव झटिति मोक्ष्यसे। सखे ! सुकवे ! सायंकाले पुनः अपि रुद्रनाम्नि प्रयागे त्वं सहचरी सार्द्धं एव अत्र वासार्थं व्रज।

अनुवाद- हे बन्धु ! गौरी कुण्ड पर आकर गर्म पानी के स्रोत में स्नान करके आप अपनी मार्ग की थकान को निश्चय ही छोड़ देंगे। हे मित्र सुकवि ! सायंकाल तक आप पुनः धर्म पत्नी के साथ रुद्र प्रयाग में निवास हेतु आ जाइए।

प्रातःकाले परमसुखदे मुक्तिकामः सखे त्वं
विश्वेशस्याप्रतिमबदरीकाननं सम्प्रयाहि
दिव्यं यस्य त्रिभुवनपतेः प्राप्य किञ्चित्कटाक्षं
जीवो मुक्तो भवति जननान्नूनमेवेति सत्यम् ॥ ८८ ।

अन्वय– सखे ! त्वं परमसुखदे प्रातः काले मुक्तिकामः विश्वेशस्य अप्रतिम-वदरीकाननं सम्प्रयाहि । यस्य त्रिभुवनपते दिव्यः किञ्चित् कटाक्षं प्राप्य जीवः जननात् नूनं एव मुक्तः भवति इति सत्यम् ।

अनुवाद-- हे सखे ! तुम परम सुखद प्रातः काल के समय मुक्ति की कामना से विश्वेश भगवान् के अतुलनीय वदरीवन (वदरीनाथ) की ओर प्रयाण करो । जिन त्रिलोकी नाथ के दिव्य कटाक्ष को प्राप्त करते ही जीव जन्म मरण से मुक्ति हो जाता है यह सत्य है ।

क्षिप्रं क्षिप्रं प्रचल सुकवे पूर्वके दिग्विभागे
गत्वा चाग्रे नयनरुचिरं पुण्यकर्णप्रयागम्
दृष्ट्वा मुग्धो ह्यलसनयनैर्द्रक्ष्यसि त्वं चमोलीं
यस्या अग्रे सुलघुवसतिः पिप्पलीकोटिनाम्नी ॥ ८९ ॥

अन्वय– सुकवे ! क्षिप्रं क्षिप्रं पूर्वके दिविभागे प्रचल अग्रे गत्वा नयन रुचिरं पुण्यकर्ण प्रयागं च दृष्ट्वा त्वं मुग्धः (सन्) अलसनयनैः चमोलीं द्रक्ष्यसि यस्याः अग्रे पिप्पलीकोटिनाम्नी सुलघुवसतिः (वर्तते)

अनुवाद-- हे सुकवि ! तेजी से पूर्व दिशा की ओर चलो । आगे चलते ही नेत्रों को सुखदायी पवित्र कर्ण प्रयाग को देख कर तुम मुग्ध होकर अलसाये नयनों से आगे चमोली को देखोगे जिससे आगे पीपल कोटि नामक एक छोटी सी वस्ती है ।

घोरैश्शब्दैः प्रवहति शुभा घर्घरैः सात्र नन्दा
उल्लंघ्येमां विशदरचितेनेह वै सेतुकेन
हेलंगाख्यं सुभटनगरं प्राप्स्यसे मित्र नूनं
ज्योतिष्पीठं लसति भुवने यस्य पार्श्वे पवित्रम् ।। ९० ।

अन्वय– मित्र ! अत्र घर्घरैः घोरैः शब्दैः शुभा सा नन्दा प्रवहति इमां इह विशदरचितेन सेतुकेन उल्लङ्घ्य हेलंगाख्यं सुभटनगरं नूनं प्राप्स्यसे यस्य पार्श्वे पवित्रं ज्योतिष्पीठं भुवने लसति ।

अनुवाद– मित्र ! यहां घरघराती हुई प्रचण्ड शब्द करती वह शुभ नदी अलकनन्दा प्रवाहित होती है। इसको यहां बने विशाल सेतु द्वारा पार करके सैनिक छावनी हेलंग को प्राप्त करोगे जिसके निकट ही पवित्र ज्योतिष्पीठ (जोशीमठ) है।

तप्तो यत्राप्रतिमविधिना त्रोटकाचार्यसूरिः
तस्मिन्पीठेऽ विपुलसमये मार्गकष्टं विहाय ।
नीचैर्गत्वा शिखरिशिखरात्त्वं व्रजेरुर्ध्वदेशं,
यस्मिन गत्वा क्षितितलगतश्चास्ति विष्णुप्रयागः ।। ९१ ।

अन्वय- यत्र त्रोटकाचार्यसूरिः अप्रतिमविधिना तप्तः तस्मिन् पीठे अविपुलं समये मार्ग कष्टं विहाय त्वं शिखरि शिखरात् नीचैः गत्वा ऊर्ध्वदेशं व्रजेः । यस्मिन् गत्वा क्षितितलतगतः विष्णु प्रयागः च अस्ति ।

अनुवाद- जहां त्रोटकाचार्य ने अप्रतिम विधि से तप किया था। उस पीठ पर कुछ समय में थकान दूर कर तुम शैलशिखर से नीचे उतर कर पुनः ऊपर की ओर चढ़ो। जिस मार्ग से चलने पर आगे विष्णु प्रयाग है।

तुंगाञ्छृंगान्परमसुखदान् वीक्षमाणः समन्तात्
गच्छन्नूर्ध्वं नयनरुचिरान् निर्झरान्द्रक्ष्यसि त्वं ।
मध्ये मध्ये हिमगिरितले लुप्तधारां च नन्दां,
दृष्ट्वा मोदं सुरपुरभवं लप्स्यसे नूनमेव ॥ ९२ ॥

अन्वय-- परमसुखदान् तुंगान् श्रृंगान् समन्तात् वीक्षमाणः ऊर्ध्वं गच्छन् त्वं नयनरुचिरान् निर्झरान् द्रक्ष्यसि ! मध्ये मध्ये हिमगिरितले लुप्तधारां नन्दां च दृष्ट्वा नूनं एव सुरपुरभवं मोदं लप्स्यसे ।

अनुवाद– परम सुखद ऊंचे ऊंचे शिखरों को चारों ओर से देखकर ऊंचाई पर चढ़ते हुए तुम नेत्र सुखद झरनों को देखोगे बीच बीच में हिमालय की घाटी में (बर्फ से ढकी होने के कारण) लुप्त धारा वाली अलकनंदा को देखकर स्वर्गीय आनन्द पाओगे ।

मार्गान्ते त्वं नगपतिगृहे रम्यभागे पवित्रे,
नन्दातीरे रुचिरबदरीशस्य गेहं पवित्रम् ।
दर्शं दर्शं चकितचकितो मुग्धभावेन बन्धो,
हृद्देशे स्वे सकलसुषमाटंकणं चात्र कुर्याः ॥ ॥ ९३ ॥

अन्वय– बन्धो ! मार्गान्ते पवित्रे नगपति गृहे रम्यभागे नन्दातीरे रुचिर बदरीशस्य पवित्रं गेह दर्शं-दर्शं त्वं मुग्धभावेन चकितचकितः (सन्) स्वे हृद्देशे सकलसुषमाटकणं च अत्र कुर्याः ।

अनुवाद- मित्र ! मार्ग के समापन पर पवित्र हिमालय के घर में रमणीय अलकनन्दा के तट पर सुन्दर बदरीश्वर का पवित्र मन्दिर देख-देख कर तुम मुग्ध भाव से चकित होते हुए हृदय में वहां की सारी सुषमा को टंकित करने का प्रयास करोगे ।

अद्रिक्षेत्रे सुखदबदरीमन्दिरे त्वं यदा स्या-
स्तस्मिन्काले बहुलजनानां सुपुण्यं भवेत्ते ।
नेहायातुं प्रभवति जनो घोरपापानुयायी,
वैकुण्ठे को विशति मनुजः पुण्यराशिं विहाय ।। ।। ९४ ।।

अन्वय-- त्वं यदा अद्रिक्षेत्रे सुखदबदरी मन्दिरे स्याः तस्मिन् काले ते बहुलजननानां सुपुण्यं भवेत् । इह घोर पापानुयायी जनः आयातुं न प्रभवति । कः मनुजः पुण्यराशिं विहाय वैकुण्ठे विशति ।

अनुवाद– तुम जब पर्वत प्रान्त में सुखदायी बदरीनाथ मन्दिर में होओगे उस समय तुम्हारे ढेर सारे जन्मों का पुण्योदय होगा । यहां घोर पापीजन आने में समर्थ नहीं होते । भला कौन मनुष्य पुण्यराशि के बिना वैकुण्ठ में प्रवेश पाता है ।

दूराद् दृष्टवाऽप्रतिमरुचिरं चित्रितं तोरणं त-
न्मुग्धं मुग्धं भवति हृदयं नूनमेवास्य लक्ष्म्याः ।
अस्मिन्क्षेत्रे नरतनुधरो यश्चनारायणो मे
आस्ते नूनं सकलसुखदो लोककल्याणकामः ।। ।। ९५ ।।

अन्वय-- अप्रितमरुचिरं चित्रितं तत् तोरणं दूराद् दृष्ट्वा अस्य लक्ष्म्याः हृदयं नूनं एव मुग्धं मुग्धं भवति । अस्मिन् क्षेत्रे नरतनुधरः सकलसुखदः लोककल्याणकामः यः मे नारायणः (सः) नूनं आस्ते ।

अनुवाद– अत्यन्त सुन्दर रंगे हुये उस मन्दिर के तोरण द्वार को दूर से देखकर उसके सौन्दर्य से हृदय निश्चय ही मुग्ध हो जाता है । इस क्षेत्र में नर शरीर धारी सर्व हितकारी लोक कल्याण की कामना वाले मेरे भगवान नर नारायण निवास करते हैं ।

कामो भीतो नरकृतसुखादत्र नीत्वोर्वशीं च
यातो लोके तदनुसुकवे श्रीहरेर्भक्त एकः ।
अत्रायातः सरसफलभुक् चोद्धवाख्यो विपश्चित्-
आत्मारामो दशमपठनेनाप्तवानत्र मुक्तिम् ॥ ॥९६ ॥

अन्वय– सुकवे ! नरकृतसुखात् अत्र भीतः कामः उर्वशीं नीत्वा लोके यातः तदनु श्रीहरेः एकः भक्तः सरसफलभुक् उद्धवाख्यः विपश्चित् अत्र आयातः च (यः) आत्मारामः दशमपठनेन अत्र मुक्ति आप्तवान् ।

अनुवाद– हे सुकवि ! भगवान् नर नारायण के द्वारा प्रदत्त सुख से भयभीत कामदेव यहीं से उर्वशी नामक अप्सरा को प्राप्त करके स्वर्ग गया था। इसके पश्चात् श्री हरि का एक भक्त भागवत पुराण रूपी सरसफल का भोक्ता उद्धव नाम का विद्वान् यहां आया जो आत्माराम था और दशमस्कन्ध के पाठ से मुक्ति पा गया था ।

सायंकाले विमलहृदयेनात्र नीराजने त्वं
रूपं पश्येर्नरतनुधरस्याद्भुतं श्रीमुरारेः ।
हृद्रोगश्चेत्कलिमलकृतो नङ्क्ष्यति क्षिप्रमेव,
कुष्ठाहीने जगपतिगृहे कुत्र वा रोगकुष्टा ॥ ॥ ९७ ॥

अन्वय– त्वं सायंकाले विमलहृदयेन अत्र नीराजने नरतनुधरस्य श्रीमुरारेः अद्भुतं रूपं पश्येः । कलिमलकृतः हृद्रोगः चेत् क्षिप्रं एव नङ्क्ष्यति । कुष्ठाहीने जगपतिगृहे रोगकुष्ठा कुत्र वा ।

अनुवाद– तुम सायंकाल में विमल हृदय से यहां आरती में नर शरीर धारी श्री मुरारि भगवान् के अद्भुतरूप को देखोगे। कलिमल से हुआ हृद्रोग (काम) शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा । कुष्ठाहीन विश्वपति के घर में रोग कुष्ठा कैसे हो सकती है।

सायंकाले निजगतधनाद्देहि मुद्रा-सहस्त्रं,
येन प्रातस्त्रिभुवनपतेः श्रीवरस्याभिषेके ।
अग्रे स्थानं परमसुखदं प्राप्स्यसे मित्र तत्र,
यत्र स्थित्वा नयनसुफलं लप्स्यसेऽत्राभिषेके ॥ ९८ ॥

अन्वय- मित्र ! सायंकाले निजगतधनात् मुद्रासहस्रं देहि येन प्रातः त्रिभुवनपतेः श्रीवरस्य अभिषेके तत्र परमसुखदं स्थानं अग्रे प्राप्स्यसे यत्र स्थित्वा अत्र अभिषेके नयनसुफलं लप्स्यसे ।

अनुवाद- हे मित्र ! सायंकाल में अपने संचित धन से एक हजार मुद्रायें मन्दिर में देना जिससे प्रातः काल में त्रिलोकीनाथ लक्ष्मीपति बदरीश्वर के अभिषेक में वहां सुखदायी स्थान आगे ही पा लोगे जहां बैठकर अभिषेक में नेत्रों का परम सौभाग्य प्राप्त कर लोगे ।

श्रौतान् मंत्रान् श्रवणरुचिरान् विप्रवृन्दाः पठन्ति,
श्रावं श्रावं कविकुलमणे त्वं विकुण्ठस्तदा स्याः ।
ईशं दृष्ट्वा नरमपि विभुं चोर्वशीमुद्धवञ्च,
पूतात्मा त्वं गरुडविहगं नारदञ्चापि भूयाः ॥ ९९ ॥

अन्वय- कविकुलमणे ! श्रवणरुचिरान् श्रौतान् मंत्रान् विप्रवृन्दाः पठन्ति श्रावंश्रावं त्वं तदा विकुण्ठः स्याः । (तत्र) ईशं विभुं नरं उर्वशीं उद्धवं च गरुडं नारदं च अपि दृष्ट्वा त्वं पूतात्मा भूयाः ।

अनुवाद- हे कविकुलमणि ! कर्ण सुखद वैदिकमन्त्रों को यहां विप्रगण पढ़ते हैं उन्हें सुनते सुनते ही तुम विकुण्ठ हो जाओगे । वहांपर बदरिकेश, नर, उर्वशी, उद्धव पक्षिराजगरुण एवं देवर्षि नारद को (प्रतिमाओं के रूप में) देखकर तुम पवित्र हो जाओगे ।

आहारे त्वं मधुर-मधुरं रम्यकिञ्जल्कयुक्तं,
उच्छिष्टं श्रीहरिवरमुखादोदनं मोदकञ्च,
भुक्त्वा नूनं परमरुचिरं श्रीप्रसादं सुभक्त्या,
हृष्टात्मा सन् व्रज मम सखे शङ्कराचार्यपीठम् ॥ १०० ॥

अन्वय- त्वं आहारे रम्यकिंजल्कयुक्तं मधुरमधुरं श्रीहरिवरमुखाद् उच्छिष्टं ओदनं मोदकं च परमरुचिरं श्री प्रसादं सुभक्त्या भुक्त्वा नूनं हृष्टात्मा सन् मम सखे शङ्कराचार्य पीठं व्रज।

अनुवाद- तुम आहार में रमणीय केशर से युक्त अत्यन्त मधुर भगवान श्रीहरि के मुख से उच्छिष्ट (अर्थात् भोग लगे हुये) मीठे चावल एव लड्डू (बेसन के) जो परम रुचिर हैं उन्हें भक्ति सहित खा करके प्रसन्नात्मा होकर मेरे मित्र ! शङ्कराचार्य पीठ को जाना।

शिष्यैः सार्द्धं वसति विमलोऽद्वैतकृच्छंकरोऽयं,
अस्यैवेयं रुचिरबदरीशस्य गेहेऽस्ति सृष्टिः।
दृष्ट्वा तस्याप्रतिमविभवं मन्दिरस्थं समग्रं,
को वा लोके स्तवनरचनं संविधातुं समर्थः ॥ १०१ ॥

अन्वय- विमलः अद्वैतकृत् शंकरः अयं शिष्यैः सार्द्धं वसति। अस्य एव रुचिर बदरीशस्य गेहे इयं सृष्टिः अस्ति। तस्य मन्दिरस्थं समग्रं अप्रतिमविभवं दृष्टवा लोके कः वा स्तवनरचनं संविधातुं समर्थः।

अनुवाद-- विमल, अद्वैत सिद्धान्तके संस्थापक थे आचार्य अदि शंकर यहां शिष्यों के साथ निवास करते हैं। इन्ही के द्वारा यह रुचिर बदरीनाथ जी का मन्दिर स्थापित किया गया था उनके मन्दिर में स्थित समस्त वैभव को देखकर कौन उनकी स्तुति करने में समर्थ हो सकता है।

सौन्दर्यं त्वं स्थिरनयनयोर्वीक्ष्य नारायणस्य,
हृष्टात्मा सन्पुलकिततनुः स्याः सखे ! नूनमेव ।
रम्यां शोभामतुलितरां वीक्ष्यपूर्वं सुरेशो,
देवेन्द्रोऽपि प्रकृतिसुषमा पाशमध्ये निबद्धः ॥ ॥ १०२ ॥

अन्वय-- सखे ! त्वं स्थिरनयनयोः नारायणयोः सौन्दर्यं वीक्ष्य हृष्टात्मा सन् तत्र नूनं एव पुलकिततनुः स्याः । रम्यां शोभां अतुलिततरां पूर्वं वीक्ष्य सुरेशः देवेन्द्रः अपि प्रकृतिसुषमा पाशमध्ये निबद्धः ।

अनुवाद-- तुम स्थिर अपलकनयनों से नारायण के सौन्दर्य को देखकर प्रसन्तात्मा होकर निश्चिय ही पुलकित हो उठोगे । यहाँ की अतुलनीय शोभा को देखकर पूर्वकाल में सुरेश देवेन्द्र भी प्रकृति की सुषमा के पाश में फँस गये थे । (ध्वनि-कवि के मित्र देवेन्द्रजी भी यहां अपनी पत्नी सुषमा जी के सौन्दर्य में खो गये थे)

बन्धो! गत्वा त्रिभुवनपतेर्मन्दिरे त्वं प्रयाणे,
नम्रैश्शब्दैर्मम जडमतेर्वन्दनं संवदस्व ।
इच्छारामो द्विजकुलगतो देव ते पादपद्मे,
यात्रावृत्तं झटिति रचितं प्रैषयन्मित्रदूतम् ॥ ॥ १०३

अन्वय-- बन्धो ! प्रयाणे त्वं त्रिभुवनपतेः मन्दिरं गत्वा नम्रैः शब्दैः मम-जडमतेः वन्दनं संवदस्व । (यत्) देव! द्विजकुलगतः इच्छारामः ते पादपद्मे झटिति रचितं यात्रावृत्तं मित्रदूतं प्रैषयत् ।

अनुवाद-- मित्र ! चलते समय तुम त्रिलोकीनाथ के मन्दिर में जाकर विनम्र शब्दों से मुझ जड़बुद्धि वाले (इच्छाराम) का वन्दन भगवान् से कहना । हे देव ! ब्राह्मणवंशोद्भव इच्छाराम ने तुम्हारे पादपद्मों में प्रणाम करके यह प्रत्यग्र (तुरन्त) रचा हुआ यात्रा वृत्त मित्रदूत-काव्य समर्पित किया है ।

आयातोऽसौ निजपरिकरैः संयुतो ह्यत्र पूर्वं,
देवेन्द्राद्यैः सुसखिसुषमासंवृतो दीपकैश्च
पत्न्याः सार्द्धं प्रमुदितमना भक्तियुतो विनम्रः
देयं तस्मै चरणशरणं विप्रवंशाङ्कुराय ॥ १०४ ॥

अन्वय— असौ पूर्वं हि अत्र निजपरिकरैः संयुतः, देवेन्द्राद्यैः दीपकैः च सुसखि-सुषमा संवृतः (स्व) पत्न्याः सार्द्धं प्रमुदितमना भक्तियुक्तः विनम्रः आयातः। तस्मै विप्रवंशाङ्कुराय चरण शरणं देयम्,

अनुवाद— हे पहले यहां अपनी पत्नी (सुनीता) के साथ देवेन्द्र गोयल मित्र के साथ दीपक (मित्र पुत्र) के साथ तथा सखी सुषमा (मित्र पत्नी) के साथ मुदित मन से भक्ति युक्त होकर विनम्रता पूर्वक आया था। उस विप्र वंश के अंकुर (उदीमानकवि) के लिए अपनी चरण-शरण प्रदान कीजिये।

तीर्थे क्षेत्रे स्खलतिविधिना यत्कृतं स्यान्ममापि,
सर्वं पापं शरणद विभो मे क्षमस्वाद्य सद्यः।
लोके पुण्ये त्वगजगपते पुण्यहीनस्त्वदीये,
नैवायातुं प्रभवति जनो तर्हि शं मे विधेहि ॥ १०५ ॥

अन्वय- विभो ! तीर्थे क्षेत्रे स्खलति विधिना मयापि यत्कृतं स्यात् शरणद ! मे सर्वं पापं अद्य सद्यः क्षमस्व। अगजगपते त्वदीये पुण्ये लोके तु पुण्यहीनः जनः आयातुं न एव प्रभवति। तर्हि मे शं विधेहि।

अनुवाद- हे सर्व समर्थ ! तीर्थ क्षेत्र में मुझसे भी जो गलतियां हुई हों हे शरण दाता ! मेरे सारे पापों को आज आप तुरन्त क्षमा करें। हे स्थिर चर जगत् के स्वामी तुम्हारे पवित्र लोक में पुण्य हीन व्यक्ति तो आ ही नही सकते अतः मेरा कल्याण कीजिए।

अस्मिन्काव्ये तव महिमनि स्याद्ध्रुवं दोषराशिः,
क्षन्तव्योऽहं विकलकरणस्त्वं विभो ! सर्ववेत्ता ।
यद्वा वर्ण्यं प्रमदविधिना च्यावितं तद्धि सर्वं,
स्मेरालोके तव जगपते पूर्णतां यातु सद्यः ।। १०६ ।।

अन्वय-- विभो ! त्वं सर्ववेत्ता (असि) अस्मिन् काव्ये तव महिमनि ध्रुवं दोष राशिः स्यात् अहं विकलकरणः क्षन्तव्यः । जगपते यद वा वर्ण्यं प्रमदविधिना च्यावितं तत्हिसर्वं तव स्मेरालोके सद्यः पूर्णतां यातु ।

अनुवाद– हे विभो ! तुम सब कुछ जानते हो । इस काव्य में तुम्हारी महिमा में कुछ न कुछ त्रुटियां अवश्य रहीं होंगीं । मैं विकल इन्द्रियों वाला जीव हूँ मुझे क्षमा करें । हे जगपत ! वर्णन करने योग्य जो भी वस्तु प्रमादवशाद् वर्णन से छूट गई हो वह सब आपके मन्दस्मित के प्रभाव से पूर्णता प्राप्त करें ।

मित्रे कृत्वा सुहृदि परमे दूतभावं मयेत्थं,
हैमाद्रेस्तां शिखरसुषमां वीक्ष्य चापल्यभावाद् ।
बाल्यैर्वाक्यैः रुचिरबदरीशस्य यात्रा निबद्धा,
काव्यं तन्मे जनसुखकृते मित्रदूतं बभूव ।। १०७

अन्वय– परमे सुहृदि मित्रे दूतभावं कृत्वा हैमाद्रेः तां शिखरसुषमां वीक्ष्य चापल्यभावाद् बाल्यैः वाक्यै रुचिर बदरीशस्य यात्रा निबद्धा । तन् मे काव्यं जनसुखकृते मित्रदूतं बभूव ।

अनुवाद- मैंने अपने परम सुहृद मित्र में (रमाकान्त शुक्ल) ही दूत भाव की कल्पना करके हिमालय की उस शैल सुषमा को देखकर चंचलता के बश बाल वचनों से (अपरिपक्वकवि त्व शक्ति) सुखद बदरी नाथ की यात्रा का वर्णन किया है । वहीं मेरा काव्य लोगों के सुख के लिए मित्र दूत बन गया है ।

मित्रे दूते जयति महिमा जह्नुजायाः सुरम्यो,
मित्रे दूते जयति सुषमा कापि हैमाद्रिभूमेः ।
मित्रे दूते जयति सुकुलः श्री रमाकान्त शुक्लः,
मित्रे दूते जयति सुकवी रामनामो द्विवेदः ॥१०८ ॥

अन्वय-- मित्रे दूते जह्नुजायाः सुरम्यः महिमा जयति
मित्रे दूते हैमाद्रिभूमेः का अपि सुषमा जयति
मित्रे दूते सुकुलः श्री रमाकान्तः शुक्लः जयति
मित्रे दूते सुकवी रामनामः द्विवेदः जयति ।

अनुवाद-- मित्रदूत में गंगा की रमणीय महिमा का उत्कर्ष हैं। मित्रदूत में हिमालय भूमि की किसी सौन्दर्य सुषमा की जय है। मित्रदूत में सुकुल (शुक्ल) श्री रमाकान्त की जय है। मित्रदूत में सुकवि इच्छाराम द्विवेदी की जय है।

इच्छाराम कृतं वृत्तं,
यत्र धाम चतुष्टयम् ।
वर्णितं तस्य पाठेन,
बदरीशः प्रसीदति ॥ १०९ ॥

अन्वय- इच्छाराम कृतं वृत्तं यत्र धाम चतुष्टयं वर्णितं तस्य पाठेन बदरीशः प्रसीदति ।

अनुवाद- इच्छाराम द्वारा रचित इस यात्रा वृत्त का जिसमें यमुनोत्री गंगोत्री केदारनाथ बदरीनाथ रूपी चार धामों का वर्णन किया गया है, पाठ करने से बदरीनाथ भगवान् प्रसन्न होते हैं।

शुद्धि पत्रम्

अशुद्ध	पंक्ति	शुद्ध	पृष्ठ संख्या
ग्रन्थस्यस्य	१७	ग्रन्थस्यास्य	पुरोवाक् २
महभागेन	२२	महाभागेन	" "
नारंदीं	१४	नारदीं	१५
जगन्मानः	१५	जगन्मानवः	२०
—	१९	यस्यां	२३
द्रारा	१०	द्वारा	३०
ष्टात्मा	४	हृष्टात्मा	३४
पूर्वपुप्यै	७	पूर्वपुण्यै	४०
समाधा	१४	समाधिं	४३
कुष्ठा	२३	कुण्ठा	४९
ह	८	वह	५३
विनभ्रता	११	विनम्रता	५३
उदीमान	११	उदीयमान	५३